

रचयिता एवं रचना



विद्यालय के प्राचार्य पद पर रह कर न्याय, ध्याकरण साहित्य आदि समग्र शास्त्रों के जिज्ञासु छात्रों को अपनी वाणी-सुधा-रस-धार से तृप्त पारगत किया। साथ ही दस साल तक महेसाणा के टी० जे० हाई स्कूल में सहायक शिक्षक के रूप में भी रहे। यहाँ से अवकाश प्राप्त होने के पश्चात् जीवन के शेष दिवस उन्होंने नडियाद में व्यतीत किया। और वही १६ नवम्बर १९६५ में अपनी पाँच पुत्रियों को छोड़कर दिवगत हो गये।

श्री याज्ञिक जी की सस्कृत भाषा और साहित्य के प्रति विशेष अभिरुचि थी। अध्यवसाय और मनन के परिणामस्वरूप उसके अधिकारी विद्वान् हुए यही कारण था कि उनकी विद्वत्ता से आकृष्ट होकर बड़ौदा नरेश महाराज सयाजीराव ने प्रसिद्ध सस्कृत कालेज के प्राचार्य-पद पर आसीन किया था। एव वाराणसी के विद्वद्सभाजि ने उन्हें 'साहित्यमणि' की मानद उपाधि से विभूषित किया। सरस्वती और लक्ष्मी के जन्मजात विरोध के कारण श्री याज्ञिक जी को जीवन-पर्यन्त निर्धनता से संघर्ष करना पड़ा। तथापि साहित्य-रचना की उत्कट अभिलाषा के फलस्वरूप उन्होंने गुजरात तथा सस्कृत साहित्य को अपनी कृतियों से समृद्ध किया। गुजरात प्रदेश के साहित्य सर्जकों की दृष्टि नाटक रचना की ओर नहीं मयी थी, श्री याज्ञिक जी ने अपनी कृतियों से साहित्यिकों को आकर्षित कर दिया और साहित्य-समाज में एक नयी परम्परा का श्री गणेश हुआ। उनके पश्चात् अन्य कई नाटक-कारों का प्रादुर्भाव भी हुआ। इनकी सस्कृत कृतियाँ—

१. छत्रपतिसाम्राज्यम् २. सयोगितास्वप्नम्बरम्

३. प्रतापविजयम् और गुजरात भाषा की कृतियाँ—

१. हर्षद्विग्विजयम् (नाटक) २. नैषधचरितम्

३. तुलनात्मक धर्म विचार ४. द्वापरानु प्राचीन राजसूत्र

५. (गुजराती धर्म संहिता) सत्यधर्म प्रकाश। इसके प्रतिरिक्त

दिशानुपुराण पर आधारित 'पुराणकथातरंगिणी' नामक एक कथा

पुस्तक भी उन्होंने संस्कृत में लिखी थी। गुजराती में भी एक श्रुति 'मेवाडप्रतिष्ठा' है।

संस्कृत की नाट्यकृतियाँ उनके संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्यत्व-काल (१९२६-१९३३) में ही प्रकाश में आ गयी थी। क्रमानुसार सन् १९२८ में 'सयोगितास्वयम्बरम्' १९२९ में 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' और १९३१ में 'प्रतापविजयम्' का प्रकाशन हुआ। नाटकों का सक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

सयोगितास्वयम्बरम्—इसमें प्रसिद्ध हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान और राजकुमारी सयोगिता की प्रणय-कथा निबद्ध है। छत्रपति-साम्राज्यम्—इसमें महाराष्ट्र केदारी छत्रपति शिवाजी के जीवन और उनके शौर्यपूर्ण कार्यों एवं तत्कालीन यवन सम्राट् की दुर्निति के विरुद्ध संघर्ष और अन्त में स्वराज्यस्थापना की घटनाओं को आबद्ध किया गया है। प्रतापविजयम्—जैसा कि नाम से ही आभासित है, इस नाटक में मेवाड केदारी महाराणाप्रताप सिंह का जीवन प्रसंग उल्लिखित है। यह याज्ञिक जी की नाट्यकृतियों का सक्षिप्त परिचय है। अब हम आगे 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' नाटक के स्वरूप पर नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों तथा सीमाओं को ध्यान में रखते हुए विचार करेंगे।

नाट्यस्वरूप-मीमांसा एवं छत्रपति साम्राज्यम्

यह याज्ञिक जी की द्वितीय नाट्यकृति है। इसके पूर्व सयोगिता-स्वयम्बरम् प्रकाशित एवं विद्वानों द्वारा प्रशंसित हो चुका था। अतः इस द्वितीय कृति की उत्कृष्टता के विषय में सन्देह नहीं किया जा सकता। सर्वप्रथम हम नाट्यशास्त्रियों द्वारा निरूपित नाट्य लक्षणों पर विचार करें—'अवस्थानुकृतिनाट्यम् (दशरूपक—१)—'अवस्था की अनुकृति को नाट्य कहते हैं, दृश्य होने के कारण इसे रूप भी कहते हैं, रूप का आरोप हो जाने से 'रूपक' भी इसकी सजा है, और रस के आश्रय से होने वाले रस भेद हैं। दशरूपककार के अनुसार वे दस

नाटक की कथा वस्तु किसी न किसी इतिहास प्रतिष्ठ कथानक पर आधारित होनी चाहिए ।' जैसा कि दशरूपककार ने नाटक के विषय में निरूपित करते हुए उल्लेख किया है—'नाटक वा नायक उत्कृष्ट कोटि के सेवन करने योग्य गुणों से युक्त, धीरोदात्त, प्रतापशाली, कीर्ति का अभिलाषी, अत्यन्त उत्साही, वैदश्यों की मर्यादा का पोषक और रक्षक एवं प्रख्यात वंश में उत्पन्न हो, अथवा कोई राजपि या दिव्य (स्वर्गीय) होना चाहिए । प्रख्यात वृत्त में ऐसी वस्तु अथवा घटना जो नायक के चरित्र अथवा रस की दृष्टि से अनुचित हो, उसे छोड़ देना चाहिए या उसकी प्रस्तुति किसी प्रकार कल्पना के सहारे कर दे । सारी कथा-वस्तु को पाँच भागों में विभाजित करके फिर उन पाँचों भागों को भी खण्डों में विभक्त करना चाहिए । कथावस्तु के इन विभागों को सन्धि कहते हैं^१ । १. मुख-सन्धि—आरम्भ नामक अवस्था और 'बीज' अर्थ प्रकृति का जहाँ सयोग होना है । २. प्रति-मुख-सन्धि—प्रधान फल की माधिका कथा-वस्तु जहाँ कभी गुप्त और

१. अधिगम्य गुण्युंस्तो घोरादात्त प्रतापवान् ।
 कीर्तिकामो महोत्साहस्त्रम्यास्त्राणा महोपनि ।
 प्रख्यातवशोराजपिदिभ्यो दायत्र नायक ।
 तत्प्रख्यात विघातव्य वृत्तमत्राधिकारिकम् ।
 यत्तत्रानुचिन्न किञ्चिन्नयकस्य रसस्य वा ।
 विरुद्ध तदारित्वाज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत् ।
 अद्यन्तमेव निश्चित्य पञ्चधा तद्विभज्य च ।
 खण्डश सन्धिसंज्ञादथ विभागानपि कल्पयेत् ॥

—दशरूपक । ३-२२-२५

२. अन्तरैकार्थसम्बन्ध सन्धिरेकान्वये मति ।
 मुख प्रतिमुख गर्भो विमर्श उपरु ति ॥

—सा० द० । परिच्छेद ६

कभी प्रकट होनी प्रतीत हो । ३. गर्भ-सन्धि— प्रतिमुख-सन्धि का किञ्चित् भागिभूत बीज बार-बार प्रकट, गुप्त और अन्वेषित होता रहता है । ४. विमर्श-सन्धि— जब बीज अर्थात् अर्घ्य प्रकृति के अधिक विस्तृत हो जाने के कारण, उसके फलोन्मुख होने में व्यवधान आता है, तो विमर्श-सन्धि होती है । ५. निर्वहण सन्धि— रूपक के समाप्त होते समय जहाँ पूर्व की सन्धियों तथा अवस्थाओं के अर्थों का समाहार होता है, निर्वहण-सन्धि की स्थिति होती है । इसके अनिरीक्त बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य पाँच अर्घ्य प्रकृतियों एवं पाँच अवस्थाएँ भी आवश्यक बताया गया है । पाँच अवस्थाएँ ये हैं— १. आरम्भ— फल की प्राप्ति— हेतु जहाँ प्रथम बार उन्मुखता दिखायी पड़े २. प्रयत्न— कार्य-सिद्धि न होती दिखायी पड़ने पर तदर्थ जहाँ दीर्घता-पूर्वक प्रयत्न किया जाय । ३. प्राप्त्याशा— प्रयत्न तथा विघ्न दोनों की स्थिति की अवस्था, जहाँ दोनों के कारण फलागम का निश्चय करना कठिन हो जाय । ४. निपताप्ति— जहाँ फल की प्राप्ति का पूर्णतया निश्चय हो जाय । ५. फलागम— उद्देश्य की पूर्णरूपेण प्राप्ति । वस्तुतः कार्य कि इन पाँच अवस्थाओं का नाटक की कथा-वस्तु में भलीभाँति विन्यास करना रचनाकार की परम सफलता है ।

अवस्था और सन्धि का अनिरीक्त नाटक की कथा-वस्तु के विन्यास और उसके फलविन होने के प्रसंग में अर्घ्य-प्रकृतियों का विशेष महत्त्व होता है । आधिकारिक कथा-वस्तु के विकास और उसके आद्योपान्त

१. अवस्था षड्व कार्यस्य प्रारम्भस्य फलादिभिः ।

आरम्भयत्नप्राप्त्याशा निपताप्ति फलागमः ॥

निर्वाह में ये ही परमावश्यक तत्व है। ये अर्थ-प्रकृतियाँ पाँच हैं—
 १ वीज—कार्य सिद्धि का हतु जो प्रारम्भ में स्वल्पमात्रा में निर्दिष्ट नाटक के अग्रभाग में अनेकश विस्तृत होकर पल्लवित होता है। २ बिन्दु—प्रधान कथा के अविच्छिन्न बनी रहते, जिसके द्वारा अवान्तर कथा आगे बढ़ती है, ऐसा कारण बनकर उभस्थित होनेवाला साधन बिन्दु कहलाता है। ३. पताका—वह प्रासंगिक कथा वस्तु जो नाटक में दूर तक चलती रहे। ४ प्रकरी—प्रासंगिक कथा-वस्तु के छोटे छोटे इतिवृत्तों को प्रकरी कहते हैं। ५ कार्य—जिस फल की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया जाता है और जो साध्य होता है, वह कार्य है।^२ यही नाटक का वस्तुतः प्रमुख और अन्तिम प्रयोजन है।

संस्कृत नाटकों में प्रधान कथा वस्तु के प्रतिरिक्त कुछ ऐसे कथानक, प्रसंग अथवा घटनाएँ भी रचना के उद्देश्य की प्राप्ति में अनिवार्यतः सहायक होते हैं, परन्तु ये कथा के गठन में नहीं आते, ऐसे तथ्यों का अन्य प्रसंगों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, इन्हें

१ वीज बिन्दु पताका च प्रकरी कार्यमय च ।
 अर्थप्रकृतय पञ्च ज्ञात्वा योज्या यथाविधि ॥

—सा० द० परि० ६

२ फलस्य प्रथमो हतुर्वीज तदभिधीयते ।
 अवान्तरार्थविच्छेदे विन्दुरच्छेदकारणम् ॥
 व्यापि प्रासङ्गिक वृत्त पताकेत्वभिधीयते ।
 प्रासङ्गिक प्रदेसस्य चरित प्रकरी मता ॥

—सा० द० अ० १०

स्वल्पादृष्टस्तु तद्धेतुर्वीज विस्तायनकथा ;
 अवान्तरार्थविच्छेदे विन्दुरच्छेदकारणम् ॥
 सानुबन्ध पताकास्य प्रकरी च प्रदेसभाक् ॥

—दशरूपकाप्रकाश-६

अर्घोपशेषक कहने है ।^१ इन अर्घोपशेषको का संयोजन स्थान, समय एवं घटना की एकता रखने के लिए आवश्यक है, क्योंकि संस्कृत नाटको की संयुक्त कथा वस्तु अंको में विभाजित रहती है, दृश्य विधान होता नहीं । इन अर्घोपशेषको की संख्या पाँच है—१. विदग्धम्भक—भविष्य में होने वाली अथवा भूतकाल की घटना अथवा कथा की सूचना मध्यमपात्रों द्वारा दी जाती है । २. प्रवेशक—इसमें होनेवाली अथवा बीती हुई कथा को निम्नश्रेणी के पात्रों द्वारा सूचित किया जाता है । ३. घूलिका—किमी रहस्य विशेष को नेत्रध्य में सूचित किया जाता है । ४. प्रकाशक—अर्थ की समझ पर अग्रिमार्थ की प्रारम्भिक कथा का पात्रों द्वारा संकेत कर दिया जाता है । ५. अन्तवर्तक—एक अर्थ को उस कथा का अन्त जो कथा दूसरे अर्थ में चलती रहती है । इन अर्घोपशेषको में से प्रथम, द्वितीय—विदग्धम्भक और प्रवेशक का प्रयोग प्रायः नाटको में विशेषरूप से होता है और शेष का प्रयोग न के बराबर ही हुआ करता है ।

१. अर्घोपशेषकः सूक्ष्म पञ्चभिः प्रतिपाद्येत ।

विदग्धम्भ घूलिकाऽद्भुत्पाद्भार प्रवेशक ॥

—वसुदेवक ।

२. घृतार्थान्पमामानाहयानानां निदर्शक ।

संश्लेषार्थस्तु विदग्धम्भो मध्यमपात्रसंयोजक ॥

तद्देशानुशातोक्तरा नौपपात्रप्रयोजित ॥

प्रवर्गाऽद्भुत्प्रयमान् योगार्थस्यापसूचक ॥

अन्तवर्तकनिर्गतस्यैस्फूर्तिषार्थस्य सूचना ।

अद्भुत्पात्रात्प्रकाशक सिद्धद्वयार्थसूचनाय ।

अद्भुत्पात्रारम्भद्वयै पात्रोद्भुत्पात्रविभागय ॥

—वसुदेवक। प्रथम प्रकाश

नाटक की रचना शैली के सम्बन्ध में भी आचार्यों ने भलीभाँति निरूपण किया है। नाट्य-रचना प्रायः चार वृत्तियों में से किसी एक में होती है। वे चार वृत्तियाँ ये हैं—कँशिकी, सात्वती, आरभटी और भारती। वृत्ति का निरूपण करते समय दशरूपककार ने लिखा है—‘नायक के कार्यों के अनुकूल व्यापार को वृत्ति कहते हैं।’ (तद्रूपव्यापारात्मिकावृत्ति—द्वितीय प्रकाश)। १. कँशिकी—कँशिकी नायक प्रथम वृत्ति उसे कहते हैं जो नृत्य, गीत, विलास इत्यादि शृंगारिक चेष्टाओं के संयोग से कोमल हो। २. सात्वती—यह वृत्ति प्रायः उन रूपको में होती है, जिनका नायक सत्व, धीर्य, दया और आज्ञा आदि गुणों से युक्त हो। ३. आरभटी—यह वृत्ति उन रूपको में होती है, जिनमें माया, इन्द्रजाल, सग्राम, शोध, उद्भ्रान्ति आदि व्यापारों की सृष्टि हो। ४. भारती—जिन रूपको में वाचिक अभिनय की अधिकता—दृश्यों, व्यापारों के अनुपात सवाद ही अधिक हो, वहाँ भारती वृत्ति होती है। अस्तु परम्परानुसार ‘नाटक’ और ‘भाग्य’ भारतीवृत्ति में नाटिका ‘कँशिकी’ वृत्ति में एक हिम ‘आरभटी’ वृत्ति में लिखे जाते हैं। किन्तु यह एक सार्वभौम सिद्धान्त नहीं माना जा सकता। पुरातन काल में प्रदेश विशेष में अपनी नाट्यविधा, रचना-प्रक्रिया का प्रचलन एवं उनकी प्रतिष्ठा थी। तथापि इन वृत्तियों का शस्त्रीय विवेचन तथा वर्गीकरण का नाट्य-रचना में

- १ गीतनृत्यविलासाद्यं मृदु- शृङ्गारचेष्टितं ॥
 विशोका सात्वती सत्त्वशीर्यत्यागदयार्जवंः ।
 सलापोत्थापशावस्या साङ्ग्राह्यः परिवर्तकः ॥
 मायेन्द्रजाल सङ्ग्राम रोधोद्भ्रान्तादिवेष्टितं ।
 भारती सस्कृत प्रायो वाग्व्यापारोन्दाध्यय ।
 भेदः प्रगोचनायुक्तः वीथीप्रहसनामूलैः ॥

अपना स्थान है। अस्तु। नाट्य-रचना के उपरिलिखित तथ्यों के अतिरिक्त कुछ पारिभाषिक और गौण शब्द भी हैं जो रूपक-रचना में एक प्रकार से आवश्यक हो जाते हैं। प्रस्तावना, नान्दी, नेपथ्य, जनान्तिक, भरतवाक्य आदि का प्रयोग भी प्रायः ससृष्ट रूपको में निश्चित रूपेण किया जाता है।

छत्रपतिसाम्राज्यम्—नाट्यवैशिष्ट्य

हम ऊपर ही रचना-क्रम में यह निवेश कर चुके हैं कि यह लेखक की द्वितीय नाट्यकृति है। इसके पूर्व की रचना 'सयोगिनास्वयम्बरम्, भारतीय एवं अन्धभारतीय विद्वानों द्वारा प्रशंसित हो चुकी थी, अतः इसके भी वैशिष्ट्य के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकता। तथापि हम नाट्य-रचना-विधान के सिद्धान्त और रचना-शैली आदि की दृष्टि से इसका विवेचन करें, आवश्यक है।

'छत्रपतिसाम्राज्यम्' का कथानक सर्वथा स्तुत्य इतिहास-प्रसिद्ध है। महाराष्ट्र-केसरी छत्रपति शिवराज के शौर्यपूर्ण कार्यों और उनके साम्राज्यस्थापनायोग को नाट्यरूप प्रदान करने में श्री याज्ञिक जी ने पूर्ण प्रयास किया है। इसमें नाट्य-रचना के सभी तथ्य कथा-वस्तु, अवस्था, सन्धि आदि का प्रयोग और निर्वाह सफलता-पूर्वक किया गया है। पूरे नाटक में १६४६ से १६७४ तक की सिवाजी के जीवन-काव्यों से सम्बन्धित घटनाएँ निबद्ध हैं। लेखक ने कथा-वस्तु के लिए ग्रॅन्टवुड, सर देसाई, मॅकमिलन, श्रीपादशास्त्री और मेजर की पुस्तकों का सहारा लिया है। सिवाजी का मुख्य उद्देश्य स्वराज्य स्थापना ही नाटक का प्रमुख प्रयोजन है। इसका संकेत हमें प्रथमाङ्क में—'हम भूमि को धर्मध्वज, उन्मत्त शासकों के अत्याचार से मुक्त करने के लिए स्वयं—साम्राज्य-स्थापना के अतिरिक्त अन्य

कोई भी श्रेयस्कर मार्ग नहीं है ।^१ (यही से नाटक की मुखसन्धि, प्रारम्भ नामक अवस्था और 'बीज' अर्थ प्रकृति का आभास मिलता है ।) द्वितीयाङ्क में प्रतिमुख-सन्धि^२ का प्रारम्भ 'सम्प्रति चालीस हजार जन मेरी सेना में सम्मिलित होना चाहते हैं परन्तु धनाभाव के कारण नियुक्त करने का साहम नहीं हो रहा है ..।' अतुर्थाङ्क में तृतीय गर्भ-सन्धि^३ प्रारम्भ होती है— गुप्तचरो को शत्रुओं के विषय में पूर्णतः परिचय प्राप्त करने दो, पदाति, अश्वारोही, आदि सेना विभागों के अध्यक्ष उन्हें तैयार करें, दुर्गों के अधिकारी उनकी रक्षा के लिए निश्चल सावधान रहे, अब हम अपना पराक्रम दिखाने का अवसर है और शत्रुओं के विनाश का समय आ गया है । सप्तमाङ्क में विमर्श-सन्धि^४—'इन्हीं थोड़े दुर्गों से आज तक हमारी स्वतंत्रता की रक्षा होती रही परन्तु भाग्य के परिवर्तन से हम उन्हें छो देने के लिए प्रस्तुत हो गये हैं । फिर भी भाग्य अनुकूल होने पर पुनः ये हमारे

१ उद्धतुमेना परिपीडिता भुव,
धर्मधुतंरुग्मदराज सधं ।
साम्राज्य सस्थापनमन्तरेण,
न वर्ततेऽन्याऽर्थं करी प्रतिश्रिया ॥

२ किंश्चिद्वचनो मोक्षहेतुस्तन्निवृत्तम् । अपि च द्वीपान्तरा-
द्विषयार्थं संप्राप्तं महान्तं शास्त्रास्त्रायुधसचयं साधंलक्ष्मणानि क्रेतु-
प्रार्थयते मां फिरङ्गी वणिक्पति ।

३ प्रच्छन्न परिपन्थिना परिचयं कुर्वन्त्यनल्पं स्वशा,
अध्यक्षा. स्वपदाति सादिनिवृत्तान्सनाहयन्तुद्यता ।
दुर्गाणामवने भवन्त्ववहृता दुर्गाधिपा निदक्षला,
सखी रोपयितुं प्रतापमुदितः कालो द्वियामन्तकः ॥१०

४. परन्तु कालमहिम्ना संप्रति तानेवाहृतीकतुं वयं प्रवृत्ताः ।
तथाप्यनुकूले धैवे पुनस्त एव मविध्यन्त्यस्मत्स्वातन्त्र्यसहायाः ।

स्वातंत्र्य प्राप्ति के सहायक होंगे ।' अन्त में नवमाह्ण में नाटककार ने पञ्चम सन्धि निर्वहण का निर्वाह बड़ी ही कुशलता-पूर्वक किया है—'अम्ब मापके आदेशानुसार मैंने छह में से पाँच सहायदुर्गों को अधिकार में कर लिया है ।'^१ इतना ही नहीं साहित्यदर्पणकार के मतानुसार 'कुर्यान्निर्वहणोद्भूतम्'—लेखक ने मद्भूतरस की भी सफल अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है—'महो इस साधु की मुखाकृति मेरे पुत्र की मुखाकृति से कुछ अशो में समानता रखती है ।'^२ इस प्रकार दसवें अंक में शिवराज का राज्याभिषेक रूप साम्राज्य-संस्थापन उद्देश्य सफल हुआ है ।

पूरे नाटक में नाट्य रचना के अन्त्य नियमों का पालन—विष्कम्भक, प्रवेशक, पताका, प्रकरी, आदि का भी सफल प्रयोग हुआ है । अकास्य और अकावतार का भी प्रयोग है । अकावतार—(एक अंक की कथा का वह अंश जो अधिमाक में चले, की सूचना^३) का प्रयोग—'राज-गडबुगंभापादपास्य राजधानी योग्यताम् । यावत्प्रस्थिता यथ राज-कार्याणि पश्येम ' (द्वितीयांक) सूचना के अनुसार तृतीयांक का प्रारम्भ—(ततः प्रविशति राजगडबुगप्रसादावस्थितो मन्त्रि द्वितीय शिवराज । शिवराज — मन्त्रिन्, सुव्यवस्थितोऽपि राजमन्त्रे कथमद्यापि निर्वृति न व्रजति मे अन्तरात्मा ।' से होता है । इसी प्रकार 'विष्कम्भक' का प्रयोग पूरे नाटक में पाँच स्थानों पर किया गया है । द्वितीयांक के 'विष्कम्भक' में संनिकी का कर्तालाप जिसमें शत घटनाओं का विवरण, चतुर्थांक में होने वाले भयानी प्रतिष्ठा महोत्सव की

१ स्वदादेशानुरोधेन ममात्मसात्कृता पञ्चपा सहाय दुर्गा ।

२. राममाना—(सविस्मयम् स्वगतम्) अहो वेनाचिदशेन सबदस्यस्य मुखच्छविर्मम वरसस्य मुखच्छविवा ।

३ अत्रान्ते मूषित पानंस्तदकस्याविभागत ।

यत्राकोऽवतारयेपोऽद्वावतार इति स्मृतः ॥ —साहित्यदर्पण

सूचना, पञ्चमांक में दो गुप्तचरो की बातचीत के माध्यम से विगत घटनाओं की सूचना, इसी प्रकार सप्तमांक के विष्कम्भक में पूर्ववृत्त बताया गया है । पञ्चमांक के विष्कम्भक में शिवराज द्वारा बघनख के सहारे अफजलवध की घटना गुप्तचर द्वारा बतायी गयी है । नाटक में 'दूर का मार्ग, वन, युद्ध, राज्य और देश इत्यादि विप्लव—घेरा डालना, भोजन, स्नान, सुरत, अनुलेपन, वस्त्र का पकड़ना आदि बातों को प्रत्यक्ष नहीं दिखलाना चाहिए' । नियम का पालन पूर्णतया यहाँ किया गया है ।

'घ्राशीर्नमस्क्रियारूप . श्लोक : काव्यार्थ सूचक । नाग्दीति कथ्यते' के अनुसार शिव स्तुतिपरक ललित और भावप्रवण श्लोक से नाटक का प्रारम्भ तथा भरतवाक्य से उसकी समाप्ति हमें कालिदास, भास, भवभूति आदि के नाटकों की रीति-नीति का स्मरण करा देते हैं । 'भारती' वृत्ति के रीत्यानुसार नटी द्वारा वपाङ्गुतु का मनोहर वर्णन प्रस्तुत कराया गया है ।^२ जैसे 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में प्रीष्म का

- १ दूराध्वान वध युद्ध राज्य देशादि विप्लवम् ।
सरोध भोजन स्नान सुरत चानुलेपनम् ।
अम्बर ग्रहणादीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत् ॥

—दशरूपक । ३

२. रमयति रसयति रसा विशाला ।
विवन्ति चपलपयोधरमाला ॥
भवति सपदि ज्ञनतापविलयनम् ।
मृगयति मृगपतिरूपरि निलयनम् ॥
नमयति तद्गणमलमासार . ।
धुम्यति गर्जति पारावार ॥
गन्दति मुदितो जनपदलोकः ।
जलदविलोकनविगलितशोक ॥

—प्रथमाङ्क

वर्णन प्रस्तुत किया गया है। रचनाकार ने शिवराज के जीवन की अठ्ठाईस वर्षों की घटनाओं का आकलन और संयोजन नाटक के दस अंकों में किया है। दस अंको वाले इस नाटक को हम सामान्य लक्षणा-नुसार 'महानाटक' की संज्ञा दे सकते हैं—'पाच अंक वाला नाटक छोटा और दस अंको वाला नाटक बड़ा कहा जाता है'। अस्तु इस नक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'द्वत्रपतिसाम्राज्यम्' नाट्य-रचना विधान की कसौटी पर सर्वथा सफल एक उच्चकोटि की नाट्यकृति है। नाटक में प्रधानतः वीररस की सफल अभिव्यक्ति हुई है—प्रथमाङ्क में ही (उत्तुङ्ग.....दिनाकपाशिरवताल्लोलाकिरात शिव.) वीररस के अङ्गीरस होने और धीरे शिवराज के नायक होने का संकेत रचनाकार ने स्वयं दे दिया है। नाटक का सक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—

पहला अंक—इस अंक में साम्राज्य-स्थापित करने के लिए साधन और साधक पर शिवराज तथा उनके वयस्क मित्रों द्वारा विचार किया गया है। अंक का नाम 'साम्राज्योपशम' है। प्रस्तावना के पश्चात् शिवराज अपने मित्रों—एसाजी, वाजी और तानाजी के साथ भव पर आते हैं। प्रारम्भ में एसाजी वाजी और तानाजी आपस में यवन शासकों की अत्याचारी नीति तथा उनकी कृपा पर जीवित रहने वाले क्षत्रिय राजाओं के व्यवहार के सम्बन्ध में बातचीत करते हैं—'सभी क्षत्रिय नरेश अपने स्वार्थ के वशीभूत परस्पर बलह करके यवन सम्राट् की शरण में समुद्ध जीवन व्यतीत कर रहे हैं, यही कारण है कि आज हम भारतीय तेज से हीन हो रहे हैं।' बीच में ही शिवराज ने उनके आपसी विवाद को समाप्त करने की दृष्टि से कहा—'हमारी इस दशा का कारण यही है कि क्षत्रिय नरेश भी यवनों का सा भाव-रण करने लगे हैं अतः मित्रों इस शरती को इन अघर्षी, अन्यायी

१. पञ्चमाकमेनदवरे दशाने नाटक परम् ।

—दसहृपक । तृतीय प्रकाश ।

शासको से मुक्त करने के लिए हमें प्रयास करके स्वतन्त्र साम्राज्य की स्थापना करनी चाहिए अन्य कोई मार्ग नहीं है। उनके अन्य मित्र इस कथन से सहसा सहमत नहीं होते। इसी समय सेवक से समाचार मिला कि भगिनी को साथ लेकर गाँव जाते हुए नेताजी की बीजापुर-सैनिकों ने मार डाला। इस सूचना से शिवराज का रोष द्विगुणित हो गया और उन्होंने तुरन्त कहा—'क्या क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होकर भी हम लोग इस अपराध को क्षमा कर सकते हैं।' कदापि नहीं। हम लोग अब एकमत होकर घमंराज्य-स्थापना के लिए कटिबद्ध हो जायें। अन्ततोगत्वा उनके विचार से सभी सहमत हो गए और सर्वतोभावेन सहायक रहने का वचन दिया। इसी समय यह साम्राज्य स्थापना के प्रयास का समाचार जान तोरणादुर्ग व रसक में उपस्थित होकर दुर्ग शिवराज के अधिकार में सौंप दिया। दुर्ग प्राप्त हो जाने से सबको बड़ी प्रसन्नता हुई।

दूसरा अंक—यह निधि-प्राप्ति अंक है। इसमें सर्वप्रथम चाकरा दुर्ग के अधिकार में आने की सूचना है। फिर जो प्रथम अंक में नेताजी के मुगल-सैनिकों द्वारा मारे जाने की सूचना दी थी, उस सम्बन्ध में यह समाचार कि नेताजी को सैनिकों ने मृत समझ कर छाड़ दिया था और वह चेतना प्राप्त कर, माघेरान पत्नी के यहाँ उन्होंने शस्त्रास्त्र विद्या में कुशलता प्राप्त कर ली और राजमाची दुर्ग में प्रवेश किया। बीजापुर-सैनिकों ने उन्हें घन्दी बना लिया। फिर उन्होंने यवनवेश धारण कर लोहगड्दुर्ग में शिवराज से भेंट की यह विष्कम्भक द्वारा सूचित किया गया। उसके पश्चात् तोरणादुर्ग में शिवराज भविष्य के कार्यक्रम पर विचार-विमर्श करते हैं, घनाभाव के कारण शस्त्रास्त्रों के संप्रद और सैन्य-संगठन में कठिनाई का अनुभव हो रहा है। उन्होंने नेताजी के सकेतानुसार भवानी-मन्दिर में जाकर उनकी प्रार्थना की। वहाँ उन्हें आकाशवाणी सुनायी पडनी है कि 'निरास न हो, सहायकों द्वारा अभीष्ट सिद्ध होगा।' सुनकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ।

वर्णन प्रस्तुत किया गया है। रचनाकार ने शिवराज के जीवन की घटाईस वर्षों की घटनाओं का आकलन और संयोजन नाटक के दस अंकों में किया है। दस अंकों वाले इस नाटक को हम सामान्य लक्षणा-नुसार 'महानाटक' की संज्ञा दे सकते हैं—'पाच अंक वाला नाटक छोटा और दस अंकों वाला नाटक बड़ा कहा जाता है'। यस्तु इस सश्लिष विवेचन से स्पष्ट है कि 'द्यन्नपतिसाम्राज्यम्' नाट्य-रचना विधान की कसौटी पर सर्वथा सफल एक उच्चकोटि की नाट्यकृति है। नाटक में प्रधानतः धीररस की सश्ल अभिव्यक्ति हुई है—प्रथमाङ्क में ही (उत्तुङ्ग... ..पिनाकपाणिरवतास्तीलाकिरात शिव) धीररस के अङ्गीरस होने और धीर शिवराज के नायक होने का संकेत रचनाकार ने स्वयं दे दिया है। नाटक का सश्लिष ध्यानक दस प्रकार है—

पहला अंक—इस अंक में साम्राज्य स्थापित करने के लिए साधन और साधक पर शिवराज तथा उनके वयस्क मित्रों द्वारा विचार किया गया है। अंक का नाम 'साम्राज्योपश्रम' है। प्रस्तावना के पश्चात् शिवराज अपने मित्रों—एसाजी, बाजी और तानाजी के साथ भक्ष पर आते हैं। प्रारम्भ में एसाजी बाजी और तानाजी घापक में धवन शासक की अस्वाचारी नीति तथा उनकी कृपा पर जीवित रहने वाले शत्रिय राजाओं के व्यवहार के सम्बन्ध में वानचीत करते हैं—'समी शत्रिय नरस अपने स्वार्थ के वशीभूत परस्पर कलह करके यवन साम्राट् की शरण में समुख जीवन व्यतीत कर रहे हैं, यही कारण है कि आज हम भारतीय क्षेत्र में हीन हो रहे हैं।' बीच में ही शिवराज ने उनके घापकी विवाद को समाप्त करन की दृष्टि में कहा—'हमारी इस दशा का कारण यही है कि शत्रिय नरस भी यवनों का सा घापकरण करने लग हैं अतः मित्रों इस धरनी को इन अधर्मी, अन्यायी

१. पश्लिषमाकमेतदकरे दशाके नाटक परम् ।

—वत्तदपक । तृतीय प्रकाश ।

शासकों से मुक्त करन के लिए हमें प्रयास करके स्वतन्त्र साम्राज्य की स्थापना करनी चाहिए अन्य कोई मार्ग नहीं है। उनके अन्य मित्र इस कथन से सहसा सहमत नहीं होते। इसी समय सेवक से समाचार मिला कि भगिनी को साथ लेकर गाँव जाते हुए नेताजी को बीजापुर-सैनिकों ने मार डाला। इस सूचना से शिवराज का रोष द्विगुणित हो गया और उन्होंने तुरन्त कहा—'बया क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होकर भी हम लोग इस अपराध को क्षमा कर सकते हैं।' कदापि नहीं। हम लोग अब एकमत होकर धर्मराज्य-स्थापना के लिए कटिबद्ध हो जायें। अन्ततोगत्या उनके विचार से सभी सहमत हो गए और सर्वतोभावेन सहायक रहने का वचन दिया। इसी समय यह साम्राज्य स्थापना के प्रयास का समाचार जान तोरणादुर्ग व रक्षक ने उपस्थित होकर दुर्ग शिवराज के अधिकार में सौंप दिया। दुर्ग प्राप्त हो जाने से सबको बड़ी प्रसन्नता हुई।

दूसरा अंक—यह निधि-प्राप्ति अंक है। इसमें सर्वप्रथम चाकरा दुर्ग के अधिकार में आने की सूचना है। फिर जो प्रथम अंक में नेता जी के मुगल सैनिकों द्वारा मारे जाने की सूचना दी थी उस सम्बन्ध में यह समाचार कि नेताजी को सैनिकों ने मृत समझ कर छोड़ दिया था और वह शेरना प्राप्त कर, माधेरान यती के यहाँ उन्होंने राश्यास्त्र विद्या में कुशलता प्राप्त कर ली और राजमाची दुर्ग में प्रवेश किया। बीजापुर-सैनिकों ने उन्हें बन्दी बना लिया। फिर उन्होंने यवनवेश धारण कर लोहगडदुर्ग में शिवराज से भेंट की यह विष्कम्भक द्वारा सूचित किया गया। उससे पश्चान् तोरणादुर्ग में शिवराज भविष्य में कार्यक्रम पर विचार विमर्श करते हैं, घनाभाव के कारण शस्त्रास्त्रों के समूह और सैन्य-मगठन में कठिनाई का अनुभव हो रहा है। उन्होंने नेताजी के सबैतानुसार भवानी-मन्दिर में आकर उनकी प्रार्थना की। यहाँ उन्हें आकाशवाणी सुनायी पडनी है कि 'निरास न हो, सहायकों द्वारा अभीष्ट सिद्ध होगा।' सुनकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ।

से पुष्ट करके उनमें राष्ट्रीय-भावना का समावेश कर रहा हूँ जो भविष्य के रण में सह-युक्त बनेंगे। रामदासजी के चले जाने पर वह मन्त्रणाशुह में प्रवेश करते हैं। घरेलू-कार्य बतयाया कि बीजापुरनरेश का सेनापति बन्दी बनाने के लिए प्रस्थान कर चुका है। उसके पश्चात् ही सन्तुषकीय दूत कृष्णाजी उपस्थित होते हैं। दूत ने बीजापुरेश की ओर से सन्धि प्रस्ताव रखा। शिवराज ने प्रजा की हित कामना से म्बीकार कर लिया। फिर पन्नोजीगोपीनाथ को सन्तुष के मन की बात जानने के लिए भेजा। सन्तुष-दूत ने यह बतयाया कि हमारे सेनापति किसी प्रकार आपकी बन्दी बनाने की अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करना चाहते हैं। शिवराज ने दूत को—सेनापति से कहो कि एकाकी शिविर में मिलकर मुझे हस्तगत कर सकते हैं। यह सूचित करो कि सेना से घिर रहने के कारण आपके पास भ्रान्त में शिवराज भयभीत होना है' ममभाषा। और दूत की इच्छानुसार अपना दूत भी भेजकर ऐसी सूचना दे दी। फिर समय निश्चित हो जाने पर, ठीक समय पर बघनल आदि से सन्धि। शिवराज अग्रदत्त तानाजी के साथ एकांत शिविर में मिलने जाने का निराण किया। अपने कुछ सैनिकों को पर्यंत की उपरयका में छिपकर रहने और शूरी ध्वनि के संकेतानुसार भाग-मरण करने का आदेश भी कर दिया।

धुगों में आश्रय लें। कहकर शिवराज राजकायों के निरीक्षणार्थ सभाभवन में चले जाते हैं।

छठवाँ अंक—यह 'छलप्रबन्ध' नामक अंक है। सिंहगडदुर्ग में नेताजी और मंत्री से दरस्वर वार्ता और परक्षित मुगलप्रदेशों के अधिकृत हो जाने की सूचना। फिर शिवराज का प्रदेश और 'मन्त्रिगण युद्ध पुन निकट है' शका उपस्थित करना। इसी समय दिल्ली नगर से आगत यवन तपस्वी का प्रदेश और दक्षिणापथ का राज्यपाल आपको बन्दी बनाने के लिए, पना नगर में बैठकर आश्रमण की योजना बना रहा है, यह सूचना देना। शिवराज ने मुगलसेना में स्थित मराठा सेनापति के पास एक वारान निकालने को मुगलसेनापति से आज्ञापत्र प्राप्त करने के लिए सन्देश भेजा और कहा कि उसमें वेप बदलकर हमलोग वारासी रहेंगे। यवन तपस्वी चला जाता है। अपने साथ केवल पचास मंत्रिक, अमात्य और पदाति सेना के अघ्यक्ष को रहने का आदेश (वाराणसी में) कर दिया। मंत्री ने मुगल सैनिकों को घाला देने के लिए योजना बनायी लौटने के समय हमारे कुछ सैनिक 'बात्रज' के मार्ग में वृक्षाग्र-भागों पर और बँलों की सींगों पर कपड़ों की ज्वालाएँ जलायें। मुगल सैनिक उधर ही दौड़ेंगे।' उसके बाद शिवराज राजमाता के दर्शनार्थ चले गए।

सातवाँ अंक—यह 'मोगलेश-अनुसंधान' नामक अंक है। विद्वन्मन्त्र म मुगल सेना के दो सेनापतियों की घातचीन होती है। दूसरे सेनापति ने यह बताया कि रात्रि में सघाट के भामा के महल में शिवराज पुन गया और उसकी अँगुलियों को काट लिया। सहायताार्थ उपस्थित उसके पुत्र को शिवराज के अग्ररक्षक सैनिक ने मार डाला। मुगलसेना ने भागते हुए शिवराज का पीछा किया किन्तु बात्रजमार्ग में प्रवाह दत्तक सेना उधर चली गयी और निराश होकर लौट आयी। इससे घट ही दणिल के राजदत्त ने सिंहगडदुर्ग पर घेरा डाल दिया। अन्त में वेग धरप गया, शिवराज की मोर्चों ने उसे परास्त कर

दिया। यह सूचना पाकर राज्यपाल ने अगाधिपति के पद पर अपने मामा को तथा सेना का नायक जयसिंह को नियुक्त कर शिवराज को पकड़ने का आदेश दिया है। इसी के साथ शिवराज के दूत रघुनाथपन्त के आगमन की सूचना भी है। उसके पश्चात् सेवकों सहित शिवराज जयसिंह की सेना के शिविर की ओर प्रस्थान करते हैं। जगन्नाथपत और शिवराज की बातचीत भी होती है। निकट पहुँचकर पुरन्दर दुर्ग के मुगलसैनिकों द्वारा घिर जाने की जगन्नाथपन्त शका व्यक्त करते हैं। उसी समय घोड़े पर सवार उदयसिंह तेजी से आता है और सूचित करता है—'जयसिंह का कहना है कि मेरे आदेश का पालन स्वीकार हो तो मिला सकते हैं अन्यथा वापस जायें।' स्वीकृति देकर शिवराज जयसिंह से उसके सैन्य शिविर में भेंट करते हैं। विचार-विमर्श के बाद सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर देते हैं। जयसिंह युद्ध विराम हेतु उदयसिंह को पदाति सेना नायक को आदेश सुनाने के लिए भेजता है। यवनराज के आदेशानुसार जयसिंह शिवराज को बहुमूल्य वस्त्राभूषण प्रदान करता है।

आठवाँ अंक—इस 'प्रयाणप्रबन्ध' नामक अंक में शिवराज और यवनराज के समागम का जयसिंह द्वारा प्रबन्ध किया गया। जब शिवराज अपने सभी साथियों-सहित वहाँ पहुँचे तो उन्हें वही घेर कर बन्दी बना लिया। शिवराज ने मिष्ठान्न ले जानेवाली पचीस टोकरियाँ खरीदवा कर पंगामा और प्रारम्भ में पाँच टोकरियाँ मिठाईयों से भर कर बाहर भेजा, मुगल-रक्षकों ने भलीभाँति निरीक्षण किया और विश्वस्त हो गये कि कोई छल नहीं है। फिर एक टोकरी में शिवराज अपने पुत्र-सहित बैठकर निकल गये। उनके स्थान पर हीरोमी रोगक्रान्त होने का बहाना कर मुगलों को भ्रम में डाले रहा। भक्त में वह भी सबके साथ बेश बदलकर निकल गया और प्रयागके मार्ग में शिवराज से मिला। इस प्रकार सभी सह्यप्रदेश पहुँच गये। प्रातः

मुगल-रक्षक ने शिवराज को शयन स्थान पर न पाकर यह सूचना यवनराज को दी ।

नवाँ अंक—यह 'दुर्गविजय' नामक अंक है । प्रधानमंत्री ने राजमाता को सूचना दी कि छह मंसे पाँच दुर्गों को अधिकार में कर लिया है । उसके बाद कुछ साधु आते हैं । राजमाता साधुओं से पुत्र शिवराज के समाचार जानना चाहती हैं । प्रधान साधु राजमाता को गंगाजल से पूर्ण कलश देकर कहता है कि अभियेक के लिए तीर्थों से मैं ले आया हूँ । उस साधु की मुखाकृति को देखकर राजमाता के हृदय में शिवराज का सन्देह होता है । अन्त में शिवराज प्रकट हो जाते हैं । माता को अपार हर्ष होता है । प्रधानमंत्री चाकण आदि दुर्गों को जीत लेने की सूचना शिवराज को देता है, बल्वाण प्रान्त के विजयार्थ सैन्य समूह के प्रस्थान करने का समाचार और सिंहगड के विजय की कठिन समस्या बताता है । शिवराज ने सिंहगड के जयार्थ तानाजी के सेनापतित्व में सेना को प्रस्थान करने का आदेश दिया । दक्षिण के राज्यपाल का दूत उपस्थित होकर सावंतीम सभ्राट् का पत्र देता है । मंत्री पढ़कर सुनाता है—'शिवराज को राजपद पर प्रतिष्ठित कर पड़ोस के दो राज्यों के चतुर्थांश ग्रहण करने का अधिकार प्रदान करते हैं । शिवराज ने मंत्री को आदेश दिया—'सशक्त सेना द्वारा चतुर्थांश ग्रहण करने के बहाने महाराष्ट्र प्रदेश को अपने अधिकार में कर लेना चाहिए । इस समय मुगल-सम्राट्, गान्धार-विजय में व्यस्त है । मैं कर का संग्रह करने के लिए गुज्ज-प्रदेश जा रहा हूँ । वापस आने पर साम्राज्याभियेक-महोत्सव सम्पन्न होगा ।' मंत्री मन से खले जाते हैं ।

दसवाँ अंक—प्रारम्भ में विपरम्भक द्वारा सिंहगडदुर्ग के विजय की सूचना, साथ ही उदयभाग और तानाजी खोरो के वीरगति प्राप्त करने का समाचार प्राप्त होता है । सारा बातालाप दो राजदुर्गों में होता है । दूसरे राजदुर्ग ने बताया कि सर्वत्र शिवराज का विजयपथ

फहर उठा। कल्याणप्रदेश की आबाजी ने, प्रधानमंत्री ने माहलीदुर्ग को और प्रतापराव ने सातहेर दुर्ग को अधिकार में कर लिया है, समाचार बताता है। वार्तालाप करते हुए दोनों साम्राज्याभिषेक-मण्डप के निकट पहुँचते हैं। अभिषेक-महोत्सव सानन्द सम्पन्न होता है। विष्णुमक के पश्चात् साम्राज्याभिषिक्त शिवराज छत्र-चामरधारी सेवकों से सेविन राज्ञी-सहित रत्नसिंहासन पर आसीन मंच पर उास्थित होते हैं। उन्होंने सामन्तों के प्रतिनिधियों को बहुमूल्य वस्त्राभूषण देने, सभी ब्राह्मणों को सस, चौबीस हजार और पाँच हजार मुद्राओं सहित (क्रमशः) वस्त्राभूषणों से सम्मानित करने का आदेश कर समस्त अन्य ब्राह्मण-स्नातकों को वार्षिक-वृत्ति की व्यवस्था की अनुमति दिया। आठ प्रधानमंत्रियों को बहुमूल्य रत्न और वस्त्राभूषणों से विभूषित किया गया। युद्धभूमि में आत्मोत्सर्ग करनेवाले वीरों के कुल वालों को राज्यकुल-वैभव से सम्मानित करने का आदेश शिवराज ने प्रधानमंत्री को दिया। अन्त में गुरुचरण श्री रामदास ने उपस्थित होकर राष्ट्र-समृद्धि का धर्मोप आशीर्ष नाटक के 'भरतवाक्य' कथन द्वारा प्रदान किया। मंच से सभी जन चले जाते हैं।

साहित्यिक-सौष्ठव एवं मूल्योंकन

'छत्रपतिसाम्राज्यम्' के नाट्य-वैशिष्ट्य तथा रचना-विधान आदि पर हम पहले ही विचार कर चुके। और अब साहित्यिक-सौष्ठव का दिग्दर्शन करा देना भी उचित समझते हैं। यँदर्भीरीति एव भारती वृत्ति में लिखित इस नाटक की प्राञ्जल-परिष्कृत भाषा, इसके भाव-प्रवण चित्रण हमें अनायास ही एक सफल काव्य-प्रणेतृता का स्मरण करा देते हैं। रसाभिव्यक्ति और मलकारों का प्रयोग सहजतः हुआ है। अर्थात्तरन्यास, रूपक, दृष्टान्त, अपह्लाति, निदर्शना, उपमा, अनुप्रास, और विपम आदि मलकारों का प्रयोग विशेषतः देखने को मिनता है। साहित्यिक-सौष्ठव की दृष्टि से नाटक के प्रत्येक अंक में

आये गीत, प्रकृति चित्रण-सम्बन्धी स्थल, वीररसाभिव्यक्तिपूर्ण छन्दों का वाच्यत्व उल्लेखनीय है। प्रस्तावना के पश्चात् नाटक का प्रारम्भ वीर-भाव पूर्ण कथनों से होता है। प्रस्तावना का गीत जिसमें वर्षा ऋतु का वर्णन—'विशाल धरती जल का पूर्णरूप से आस्वादन करने लगी, चंचल मेघों का दल इधर-उधर घूम रहा है। लोक का ताप नष्ट हो रहा है, सिंह पर्वत के उच्चभाग में शरण ढूँढने लगा। जलबूदों के भार से वृक्ष-समूह झुक रहा है, विशाल सागर उफानाने लगा है। बादलों का समूह देखकर, मनुष्य शोक-रहित भव ध्यानन्वित हो रहे हैं।' कितना स्वाभाविक और हृदयहारी है।

प्रकृति-चित्रण विषयक वर्णनों को पढ़ते समय हमारा हृदय बलात् उसके भावों में रमकर उपस्थित उपादानों के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए उत्कण्ठित हो उठता है और हमें वे प्राकृतिक उपादान निर्जीव निसर्ग वस्तु नहीं घणितु जीवन्त-प्रेरणा-स्रोत से प्रतीत होते हैं—'पर्वत के ऊँचे-नीचे दुर्गम मार्ग जो वृक्षों, लताओं, झुंझों और घासों से ढँके रहते हैं प्रयत्न करने पर साध्य हो जाते हैं, इससे सीधे हमें यह शिक्षा प्राप्त होती है कि उपाय द्वारा दुर्गम रास्तों को लाया तथा कुटिल शत्रुओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है।'— (अंक ७१?)। उदय होते सूर्य की रक्तवर्ण प्रकाश विलेखनेवाली किरणों का प्रसार हो रहा है, देखिए—

अपास्य दूर मलिना तमस्विनी,
 लणो न तिर्यक् प्रसूर्तनंवासुभिः ।
 लता प्रतानाम्निकुञ्जमण्डिता,
 दिवाकरेणाकण्ठिता वनस्थली ॥ अंक २।२

सूर्य ने अपना नव किरणों के प्रसार से क्षणमात्र में ही रात्रि के मलिन शन्धकार को दूर करके, लता घात्रमजरी और निकुञ्ज से विभूषित वनस्थली को रजित कर दिया। तेजस्वी विशाल हृदय पुरुषों की महनीयता और लोकमगल-आवना के प्रसार का उदाहरण दोपहर के पूर्णउदित सूर्य से उपस्थित किया गया है—

उद्भास्य शंससिखरोच्छ्रित पादपात्र,
 तेजोनिधिः किमुदितो विरमेद्विबस्वान् ।
 अम्बुदूगलो गगनमध्यपद प्रमेख,
 धाम्ना निजेन निखिल भुवन चकास्ति ॥

—श्लोक ३।२

वया सूर्ये उदय होकर पर्वत की चोटियों पर उगे हुए वृक्षों के ऊपरी भाग को प्रकाशित करके ही विश्राम ले लेता है, नही ; वह धीरे-धीरे गगन के मध्य तक पहुँच कर अपनी किरणों के प्रकाश से समस्त जगत को ही प्रकाशित कर देता है ।' पर्वत की चोटियाँ, सघन हरित-युक्षावली, हवा के चलने से वृक्ष-ममूह के पत्तों अपनी शाखाओं के साथ घान्दोलित हो रहे हैं, सारा वन जैसे गम्भीर सिन्धु हो, हिलोरें से रहा हो—'पर्वत के पार्श्व में वृक्ष, सुल्म और लता-वितान के कारण गहन वन जिसमें सर्वत्र प्राणियों का निवास है, वायु चलने के कारण समस्त वन समुद्र की समता को प्रकट कर रहा है ।'—(श्लोक ४।२०) । विशालगड दुर्ग अपनी उच्चता और दुर्जयता के कारण कवि के लिए ऐरावत गज के समान प्रतीत होता है—'यह विशालगडदुर्ग, अपनी विशालता, ऊँचे-ऊँचे भुम्बदों के कारण, उन्नत गण्डस्थल के सदृश, सूड़ की भाँति प्रप्रभागवाला, दुराश्रमणीय, विस्तृत पार्श्वभाग से घोभित इन्द्र के गज ऐरावत की शोभा धारण कर रहा है ।— (श्लोक ५।१) । गाँव, नगर की निर्मयता और रमणीयता का दिग्दर्शन देखिए किस भनासक्त भावना से कराया गया है—

सुलितपपिकनेने पुरवित्वा रजोभि—
 वंसनमपहरन्तो तुण्डकारवन्वाताः ।
 जनपदपुरमार्गे यध्नमन्तो यथेच्छं,
 विषदभिषक्तभीता उत्सवन्ते समन्तात् ॥

—श्लोक ५।११

वर्षा का समय है। हवा चल रही है। कवि का कपन—ग्राम और नगरो के मार्ग में ववण्डर (तेजवापु) स्वेच्छापूर्वक विचरण करता, बादलों से भयभीत-सा चारो ओर से उठकर प्राकाश की ओर प्रस्थान कर रहा है, और इस प्रकार यह ववण्डर एक लुण्ठक (लुटेरा) के समान श्रान्त पथिक की घाँटा में घुल भोंककर उसके वस्त्रों का अपहरण कर रहा है। इतना ही नहीं एक स्थान पर पर्वत की उच्च चोटियाँ, सघन वृक्षावली और निर्भर धाराएँ, कवि की दृष्टि में शिवराज के लिए प्रबल दुर्ग सद्गुण प्रतीत होते हैं—‘पर्वत की ऊँची-नीची धरती, उनकी गुफाएँ, नाना प्रकार की लताओं और वृक्षों से सुशोभित बन, पर्वत के उच्च शिखर से प्रवाहित होनेवाले निर्भर, ये सभी भावके लिए सुदृढ़ दुर्ग के रूप में और शत्रु के लिए बाधा-स्वरूप स्थित हैं।— (श्लोक ७१२)। ऐसे और भी घने स्थल नाटक में हैं जहाँ नाट्यकार पूर्णरूपेण कवि के रूप में कल्पना और भाव से उद्बोधित हो उठा है। प्रकृति-सौन्दर्य चित्रण के अनिश्चित नाटककार शीघ्र विभ्रण में सर्वथा लक्ष्य है। प्रकृति-चित्रण और शीघ्र दोनों से पूर्ण यह छन्द दण्ड—

आच्छाद्येनोत्तरदिग् विप्रनननिभिष्वान्तमापादयद्भिः—

हृन्ममोद्भेदिनादः स्तनित्पदहृत्संगंभमाघोषयद्भिः ।

पारासंपातमग्न प्रनिमटविटपि व्याकुलोपरपकान्त,

मानान्तो म्लेच्छमैन्ध्रैर्जलधर निवहैदुर्गंराजः समन्तात् ॥

—श्लोक ७१४

दुर्ग चारो ओर में म्लेच्छ-सेना द्वारा घिर गया है। वृद्ध रूपी हमारे सैनिक प्रतिपक्षियों की तलवार में काट डाले गए हैं। जैसे बादल अपनी पक्षियों से मूर्ख को डेक लेते हैं, उसी प्रकार मुगलों की सेना से हमारा सेनापति घिरा हुआ है, बादलों की भीषण गरजना के समान उनके मनाई के निबलती गर्वपूर्ण ध्वनि हृदय को समाह्वय कर रही है। हमारे सैनिक उसी प्रकार व्याकुल हैं जैसे बादलों में गिरती जलधारा से वृक्षों के समूह हो जाते हैं।

नाटक के प्रथम दलोक से ही स्पष्ट है कि इसमें वीररस भगीभूत होकर अभिव्यक्त हुआ है अतः सर्वत्र शौर्य भादि भावों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक है। यही कारण है कि पर्वत के पार्श्व में स्थित सधनवन निर्भर, सरिताएँ दृगं और विशाल वृक्षों को एक वीर सैनिक के रूप में स्थान-स्थान पर वर्णित किया गया है। वर्णन पढ़ते समय वीर का शौर्य युक्त शरीर प्रत्यक्ष दृष्टिगत होन लगता है और हृदय उसके तेज से प्रकाशित होकर निर्भय हो जाता है। शिवराज के शत्रु सज्जित रूप का वर्णन पढ़कर ही हम उनके स्वरूप का दर्शन करने लगते हैं—

प्रजवतुरग वल्पितासनोऽय,
कवचधरः करवालकुन्तनदः ।
अरुणित नयनो रूपा महोन्न,
सरमसमेत्यभितो द्विपा कृतान्त' ॥

—प्रक ४।१६

तीव्रगामी घोड़े पर सवार, कवच धारण किये हुए, तलवार, भाला लिए, लाल-लाल, आँखों और महत्तेज के कारण भयानक, शत्रुओं के लिए शमराज बने धा रहे हैं। शिवराज की सेना विजय के लिए प्रस्थान कर रही है, उसका रूप देखिए—

सुतीक्ष्ण भालासिधनु समूर्जिता,
विशालदृष्टी परिणदपाश्र्वा ।
स्वानभ्यसम्भावना समेधिता
प्रयान्तु मे वन्यपदातिसया ॥

—प्रक २।११

तीक्ष्ण भालों, शृपाण, धनुषों से प्रबल, बटि प्रदेश में तूणीर बरो हुए, स्वातन्त्र्यभावना से भलीभाँति प्रोत्साहित वनवासियों की हमारी पैदल सेना प्रस्थान करे।

ऊपर हम सित चुके हैं कि दूरान्त उपमा, अर्थात्तत्प्रायः, निदर्शना,

अनुप्रास आदि अलंकारों का समावेश सहज ही हुआ है। यहाँ एक-दो उदाहरण प्रस्तुत करना अनुचित न होगा—

स्वल्पोऽप्यग्निर्ज्वलयति न किं कानन शैलसस्यं
मत्तेभेन्द्रान्विदलति न किं लीलया सिंहाशयः ।
वालोऽप्यर्को विकिरति न किं घ्नान्नमारात् क्षणेन
सर्वत्रैवाप्रतिहतरयस्नेजसा हि प्रभावः ॥

—अंक १।१२

अर्थान्तरन्यास का समावेश इसमें कितनी सहजता से हो गया है। दृष्टान्त का उदाहरण—‘साहाय्यमासाद्य मट्पदनोरुसा’ ‘कृता कबन्धता’ (अंक १।१४) और अन्त्यानुप्रास का उदाहरण—‘सुमसुकुमार रमय रमेश मां रसिकेश’ (गीत अंक ७) रूपक का उदाहरण—‘विभ्रोगुं रोदधाधि केसरिण किशोर’ (अंक १।४) अपह्लाति—‘अवेहि नैन’ ‘वपुरेय मूर्तिमत्’—(अंक २।६) और निदर्शना—‘शोकप्रकाशन’ ‘मुगपरमुपमां दधानि’ (अंक ३।१५), आदि।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ‘अत्रपतिसाम्राज्यम्’ के कथा-वस्तु तथा संघटना-विन्यास में नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों एवं सीमाओं का सर्वथा ध्यान रखा गया है। साथ ही साहित्यिक-सौष्ठव की दृष्टि से प्रकृति चित्रण, रसादि की पूर्ण अभिव्यक्ति, अलंकारों का समावेश उचित रीति-नीति से हुआ है। ‘भारती’ वृत्ति, धर्मभोरीति, वीररस की प्रधानता, स्वराज्यसंस्थापना, मंगल प्रयोजन, पराजयशाली प्रतापी नायक शिवराज, इतिहासप्रसिद्ध कथावस्तु में सभी इन कृति को एक स्पष्ट नाटक की सजा दिलाने में सर्वथा समर्थ हैं। इन सबों का यह महानाटक है। श्री याज्ञिक जी नाट्यरचना में पूर्णतया सफल हैं। किन्तु उनकी नाट्यकला का सम्यक् विवेचन ‘सद्योगिनारव्यम्बरम्’ तथा ‘प्रतापविजयम्’ के अध्ययनोपरान्त ही उचित होगा।

इस नाटक के प्रथम प्रकाशन के पश्चात् यह प्रथम बार हिन्दी-अनुवाद-सहित, द्वितीय प्रकाशन कर 'देवभाषा प्रकाशन' के व्यवस्थापक ने प्रशंसाई कार्य किया है। आधुनिक संस्कृत नाट्य कृतियों का प्रकाशन साहित्यिक कार्य है।

दाङ्कर-जयश्री,

संवत् २०२६ विक्रम

दारामज, प्रयाग—६

—शिवराङ्कर त्रिपाठी

पात्र-परिचयः



प्रमुखपात्राणि—

शिवराज	(महाराष्ट्राधिप , नाटकस्य नायक)
एसाजी	} शिवराजवयस्या सैनिका
तानाजी	
बाजी	
दादाजी	
धाबाजी	(कल्याणप्रान्ताधिप)
श्रीरामदास	(शिवराजस्य गृध्वरखा)
कृष्णाजी	(भवतराजस्य सन्देशहर)
जगन्नाथपन्त	} (शिवराजस्य सन्देशहरा)
रघुनाथपन्त	
जयसिंह	(भवतरास्य सेनानायक)
उदयसिंह	(यवनसेनाया सैनिकः)
जसवंतसिंह	(मुगल सेनापति)
रामसिंह	(जयसिंह पुत्र)
हीरोजी	(शिवराजवयस्य)
प्रतापराव	(शिवराज बुभार)
भागामट	(काशीनिवासिन पण्डितवर)
राजमाला	(शिवराजस्य जननी)
राशी	(शिवराजस्य रात्री)

अन्यपात्राणि--

प्रतीहार , कञ्चुकी , गूढचर , द्वारपाल , दुर्गपलासश्च

धर्मव्यसप्ततत्रतान् परधने सुखान् मृदो निर्वपान्,
मन्वान् विक्रमशालिनि प्रतिभटे कूटप्रयोपोत्कटान् ।
विश्वस्तैऽपि च हिंसाजान् कुलवधूतवर्षेणो सोत्सवान्,
गोविप्रेष्यपचारिण क्यमिमान् देवद्विष सधये ॥ २४

दादाजी—वस्त, शिवराज, सम्यगवधारितयवनेशस्वभावमद्य
स्वामवरोद्धं नोत्सहे । तच्छ्रुण मे परम नयवचन यदाधयणेन
निष्प्रत्यूग भविष्यन्ति तयाभितार्यसिद्धय । एव तावत्

धन्योऽप्येति क्लुपितधिय सप्रयुञ्जन्मुपातान्,
प्रीत्युद्वेकाद्वनचरपतीन् प्रीणयन् सिद्धस्तस्यान् ।
दाने माने मधुरवचनं रञ्जयन् लोकवीराम्,
स्तीतापुढंजय अनपदान् दुर्जयाश्चाद्रिदुर्गान् ॥ २५

धन्योऽप्येति—धन्योऽप्येति क्लुपिता धी येषां तान् नरेदान्
सप्रयुञ्जन् रागमयन्, प्रीति उद्वेक उत्कर्षे तस्मान् हेतो सिद्धं लक्ष्यं
येषां तान् वनचरपतीन् प्रीणयन्, दाने माने मधुरवचने लोकाः

ये धर्म विनाश वा व्रत धारण विषे हुए, परधन के लोभी, निर्वसों
के लिए क्रूर, विक्रमशाली के सामने नम्र, किन्तु प्रतिपत्नी मंत्रिणी के
साथ चल करवाने, विश्वासी लोगों के साथ भी हिंसा-वृत्ति रखने,
कुलवधुओं का मपहरण भीरु गो ब्राह्मणों पर अरवाचार करनेवाले,
देवताओं के विद्वेपी हैं । २४

दादाजी—वस्त शिवराज यवनेग के स्वभाव को भनी भांति जान
लेने के पकार धन्य हुंहे रोनी का साहय मुझसे नहीं है । धन मुनो में
जो गीतिमुक्त मान कहता है उसके गहारे धरतना मे मनीष्ट सिद्ध
होगा । तुम—

शास्त्रपरिच देव से क्लुपित हृदय राजाओं को एका के मूत्र में
बाँधो, धनो स्तनप्रदर्शने वनपरपत्तियों को (जा साथ साथ म सिद्ध
है) प्रसन्न कर धरने साथ सो, प्रजाधन, बीरों को मान, सम्मान, दान

कुमार, सर्वत्र मंत्रगुण्यधीन एव विजय । तन्मन्त्र सवरणे सर्वेषु
 स्वया साधघातेन भवितव्यम् । यत

मन्त्रो विहृष्टं पशुभिश्च गृह्यते, तल्लेश्च कुड्यं पटसंनिशम्यते ।
 समोरणोनासिपि सुदूरमुह्यते; ववधिसिद्धैराप्तभर्तस्तु भिद्यते ॥२६
 एव च सुगुप्तमश्रयं

साम्ना क्षत्रपुलिन्दबृन्दनुपतीनापावय स्थानुगान्,
 नि शङ्कु नयसश्रितो वसवतो वृष्टाश्रिपून्पर्यय ।

प्रजाजना वीरा विक्रमशालिनश्च तान् रञ्जयन् लीलाया मुद्धानि
 लीलायुद्धानि तं जनपदान् देशान् दुर्जयान् च मद्भिद्रुगान् जय ।

साम्नेति—क्षत्रा क्षत्रियाः पुलिन्दा वनेचराः सेया वुन्दानि
 समूहान् नृपतीन् च स्वानुगान् स्वानुब्रूलान् आपादय बृह । तत्तरण
 मयमश्रितो वसवतः दुष्टान् गधितान् रिपून् नि शङ्कु धर्म्य धात्रमस्व ।
 पूर्वादिषु ते शरानय, वात्रवश्च सं विवल्पिते प्रतिविधाने मा स्म प्रमत्तो
 भव प्रमाद मा बृह इत्यर्थः । स्यात्तस्य समुपास्त्व सर्वात्मना भवसम्बन्ध
 इत्यर्थः । मत्र मन्त्रिभि सामन्व्य निर्णीत धर्मं, स एव परम, प्रधानः
 यस्य तादृश सन् साम्राज्यमास्थापय ।

घोर मधुरवाणी द्वारा मस्तुष्ट करके, बीरूहल की शक्ति युद्ध द्वारा
 जनपद। घोर दुर्जेय दुर्गों पर विजय प्राप्त करो । २६

कुमार ! विजय शक्ति की योग्यता पर निर्भर करती है अतः
 तुम मंत्र की योग्यता की घोर अध्ययन साधना रहता । वज्रोक्ति—
 मंत्र, पशु-शक्तियों द्वारा ग्रहण किया जा सकता है, पत्नी, दीवार घोर
 क्षत्र होते मुन सकते हैं, शरीर धामु दूर तक मे जा सकता है एवं कभी-
 कभी अपने ही विरुद्ध जन द्वारा हमला भेद सुलभ सकता है । २६

इस प्रकार तुम तुम मन्त्रों द्वारा—शक्तियों तथा वीरों के
 शक्तियों को ध्यान पदा में करके, शक्ति के सहारे निर्जित होकर वसु से
 उन्मत्त रूप पर आचरण करो । पूर्ण रूप के साथ प्रतिक्रिया करने में

पूर्तारातिविकल्पिते प्रतिविधौ मा इम प्रमत्तो भव,
स्वातन्त्र्य सम्पास्त्व मन्त्रपरम साम्राज्यमास्यापथ ॥ २७

शिवराज — भगवन्नेव उपदेश दिन्तु साक्षाद्गुर एव । अतो
भगवन्नुपदेशाविरहेण सपादयिष्ये साम्राज्यसिद्धिम् ।

बादाजी — वरस, सफला सतु ते नयोपक्रमा । (इति निष्क्रान्त)

शिवराज — दिष्ट्या गुरुचरणा अप्यत्रानुकूला सवृक्षा ।

तानाजी — (दूर विलोच्य) कुमार सम्पागतोऽथ जराजर्जरिताङ्ग-
स्तोरणादुर्गपाल

तोरणादुर्गपाल — (प्रविश्य) (शिवराजमुपसृत्य) कुमार, धर्म-
राज्यसंस्थापनोद्यत स्वीं निशम्य तीर्थयात्राप्रवर्षेण मया स्वदायत क्रियते
मम तोरणादुर्ग । इव तत्र स्थित्वा प्रवर्तय तव शासनम् ।

शिवराज — यदत्र भवते रोचते । इव एवाह तत्र प्रत्यास्ये ।

भी प्रमाद मत करो, एव अपने मन्त्रियो द्वारा निश्चित नीति के मार्ग पर
चल कर स्वतन्त्रता की उपासना और साम्राज्य की स्थापना करो । २७

शिवराज—भगवन्, यह उपदेश नहीं साक्षात् वरदान है । अतः
आपके अनुग्रह से मैं हीन साम्राज्य-स्थापना की सिद्धि प्राप्त कर लूँगा ।

बादाजी—वरस, तुम्हारी नीति सफलीभूत हो । (चले जाते हैं)

शिवराज—भाग्य से गुरुदेष्ट भी अनुकूल हो गये ।

तानाजी—(दूर देखकर)कुमार, युद्धावस्था के कारण जर्जर शरीर
यह तोरणादुर्ग का पालक था रहा है ।

तोरणादुर्गपाल—(प्रवेश कर और शिवराज के पास पहुँचकर)
कुमार, यह सुनकर कि आप धर्मराज्य स्थापना हेतु संपार हैं, मैं तोरणा
दुर्ग आप के अधिकार में सौंप रहा हूँ क्योंकि मैं तीर्थ-यात्रा के लिए
प्रस्तुत हूँ । आप तब तक वहाँ रहकर अपना शासन प्रारम्भ करें ।

शिवराज—जैसी आपकी इच्छा । बल ही मैं वहाँ के लिए प्रस्थान
करूँगा ।

तीरणादुगंपाल — वत्स चिरंजीव । पुरपतु तब मनोरप भगवती
वरदेवता । (इति निष्क्रान्त)

शिवराज — दिष्टय दृस्तगतोऽस्माकं तीरणादुगं । एव

अनायासेन कार्यस्य यस्य सिद्धयत्युपक्रम ।

आत्ममाप्तेर्दुर्वृत्तस्य ध्याघातो नैव कुत्रचित् ॥ २८

तानाजी — भवान्यनुग्रहदालिनस्ते किमप्यसाध्य नाम ।

एसाजी — तीरणाद्यपना तु साक्षाज्यधीमन्दिरस्य तीरणमेव स्वया
समासादितम् । अत पर ते भद्रमेव पश्यामि ।

शिवराज — यस्या , भवतां साहाय्येन सनिहितैव मम साक्षाज्य-
सिद्धि । तद्युष्माभिर्भहाहोपायनेर्वशीकृत्य चाकलाकोण्डने दुगंपाली
तदधिष्ठितो दुगो सपादनीयो । ग्रहमपि ममेन पुरन्दरदुगंमात्मसात्कृत्वा
दुबुंत्त सुपेप्राप्तापिप मातुल निगूह्णामि ।

तीरणादुगंपाल — चिरजीव वत्स ! भगवती तुम्हारा मनोरप पूर्ण
करें (जाता है ।)

शिवराज — भाग्य से तीरणादुगं हमारे अधिकार में था गया । इस
प्रकार कार्य में प्रारम्भ में यदि बिना किसी बठिनार्ई के सिद्धि प्राप्त
होती है तो निश्चय ही यह पूर्ण होगा, कोई भी विघ्न नहीं हो सकता । २८

तानाजी — भवानी के अनुग्रह में आपके लिए कुछ भी बठिन नहीं है ।

एसाजी — कुमार, तीरणा दुगं के रूप में आपके साक्षाज्य-रूपी
धीमन्दिर का विह्वार ही प्राप्त कर दिया है । अतः भाग्य भी हम
आपकी उपमत्ता ही देखते हैं ।

शिवराज — मित्रों, आप सबकी सहायता से हमारी साक्षाज्य सिद्धि
प्राप्त ही है । इसलिये आप लोग उपहार देकर पारण और कोण्डने
दुगंपाली का काम में कर दुगो पर अधिकार करें, मैं भी कुटनीति द्वारा
पुरन्दर दुगं पर अधिकार करके सुपेप्राप्तापिप दुगपारी अतः मातुल
की अधिकारशुद्ध करता हूँ ।

सर्वे — यदानीपति कुमार ।

शिवराज.—साधयामस्तावत्स्वबनियोगमनुष्ठातुम् ।

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

समाप्तोऽयं साम्राज्योपक्रमनामा
प्रथमोऽङ्कः ।



सभी—कुमार को जैसी आज्ञा ।

शिवराज—बलो, अपने-अपने कर्तव्य को पूरा करने का प्रयास
करें ।

(सभी चले जाते हैं)

साम्राज्योपक्रम नामक

पहला अंक समाप्त ।



द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्येसाजीस्तानाजीश्च)

एसाजी.—अप्यभिनन्दितं देवस्याधिपत्यं चाकरणदुर्गपासेन ।

तानाजीः—अथ किम् । अपि च तस्य राजनिष्ठापरितुष्टेन देवेन पुनः स एव तत्राधिकारपदे स्थापितः ।

एसाजीः—सयाऽपि स्वामिनियोगानुरोधेन महाहोत्कोचप्रदानेन वशीकृत्य कोण्डनेदुर्गपालं तत्र प्रवर्तितं महाराजशासनम् ।

तानाजीः—देवेनापि परस्परविनाशायोद्यतान् पुरन्दरदुर्गपालात्मजा-
ननुकूलान्विषाय रिक्थांश्च विभागेन च तांस्तप्यं स्वायत्तीकृतः पुरन्दर-
दुर्गः । अनन्तरं च सहसा विजित्य स्वामिना कारागृहे निक्षिप्त्वा
दुर्विनीतो निजमातुलः ।

दूसरा अंक

(उसके पश्चात् एसाजी और तानाजी का प्रवेश)

एसाजी—क्या चाकरण दुर्गपाल ने देव का अधिकार स्विकार कर लिया ?

तानाजी—स्विकार कर लिया । और उसकी राजनिष्ठा से संतुष्ट होकर देव ने पुनः उसे उसी अधिकारपद पर नियुक्त कर दिया ।

एसाजी—मैंने भी स्वामी की आज्ञा के अनुसार बहुमूल्य उत्कोच (धूस) देकर कोण्डने दुर्गपाल को वश में करके वहाँ महाराज का शासन स्थापित कर दिया ।

तानाजी—देव ने भी, एक दूसरे के नाश-हेतु उद्यत पुरन्दर दुर्गपाल के पुत्रों को अनुकूल कर उनकी पैतृक-सम्पत्ति को उनमें विभाजित करके पुरन्दर दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया । और उसके बाद स्वामी ने सहसा दुर्विनीत अपने मातुल को जीतकर कारागार में छोड़ दिया ।

शिवराज — रेचयेंतान्यत्र शिलापट्टे ।

शिल्पिमुख्य — तथा [इति रेचयित्वा निष्क्रामति]

नेताजी — देव बहुमूल्यो लक्ष्यतेऽयं महानिधिः ।

शिवराज — अये नय निधिं किन्तु साक्षात् स्वात्प्रयदेवतं वास्मत्पुरतः
समुत्ससति । वीर

अयेहि नयं पुरतः प्रसारितं, हिरण्यरत्नप्रचयं महानिधिम् ।

एतत्त्वमोषाद्युपसन्नप्रदं, साध्याज्यलक्ष्म्या वपुरव मूर्तिमत् ॥६

नेताजी — देव, सबत्र धंयमूलान्येव भद्राणि ।

शिवराज — एवमेतद् । कः कोऽत्र भो ।

अङ्गरक्षक — (प्रविश्य) आज्ञापयतु देव ।

शिवराज — मणिकारं द्रष्टुमिच्छामि ।

अङ्गरक्षक — तथा । (इति निष्क्रामत्)

शिवराज—इस शिलापट्ट पर उ हें खाली करो ।

मुख्यशिल्पी—जो आदेश (भाण्डो को खाली करके जाता है)

नेताजी—देव बहुमूल्य महानिधि है यह ।

शिवराज—ओह निधि नहीं यह तो साक्षात् स्वात्प्रय देवी हमारे
सामने प्रकाशित हो रही है वीर

सामने बिलरी हुई इमे हिरण्यरत्न आदि महानिधि की राशि न
सभको, यह महाशक्तिमती साध्याज्य लक्ष्मी है जो अमोघ शस्त्रास्त्रो
को एकत्र करने के साधन स्वरूप मूर्तिमान हो उठी हैं । ६

नेताजी—देव धरें ही सबत्र मंगल का मूल है ।

शिवराज—हाँ यही । कौन है यहाँ ?

अङ्गरक्षक—(पहुँचकर) आदेश करें, देव ।

शिवराज—मणिकार को बुलाओ ।

अङ्गरक्षक—जैसी आज्ञा । (कहकर जाता है)

एसाजीः—विश्रमंकरता हि तेजस्विनामुपक्रमाः ।

तानाजीः—ततश्च स्वामिप्रवृत्तिमुपसभ्य यवनवेदाधरः सोऽति-
घ्न्यारातिसेनानिवेश लोहगडदुर्गाद्यस्थितेन स्वामिना समग्रताभयच्छ
सद्य एव स्वामिनो विधग्मभाजनम् सप्रति खलु द्विप्राप्यहानि तेन सह
किमपि भद्रयमाणस्तस्मिन्नेव तिष्ठतेऽस्मन्महाराजः ।

एसाजीः—विष्टया प्रतिक्षणभेद्यते स्वामिनः प्रभाव ।

तानाजीः—(ऊर्ध्वं विस्रोवय) ग्रहो प्रभाता रजनी । साधयाम-
स्तावच्छस्त्रास्त्रपरिचयं कारयितुं नयसैनिकान् ।

एसाजीः—तथा ।

(इति निष्क्रान्ती)

इति विष्कम्भकः

(ततः प्रविशति तोरणादुर्गोपवनस्थितः शिवराजः)

शिवराजः—ग्रहो,

एसाजी—तेजस्वी जन वा कार्यं विन्म ही से प्रारम्भ होता है ।

तानाजी—उसके बाद स्वामी का समाचार मालूम होने पर वह
यवनवेदाधर से शत्रु-शिविर पारकर लोहगडदुर्ग में स्वामी से भेंट की,
शीघ्र ही उनका विश्वासी बना । इस समय दो घण्टा तीन दिनों
से उसी के साथ कुछ मन्त्रणा करते हुए महाराज दुर्ग में स्थित हैं ।

एसाजी—भाग्य से स्वामी का प्रभाव क्षण-प्रतिक्षण बढ़ रहा है ।

तानाजी—(ऊपर देखकर) ग्रहो, प्रभात हो गया । खसो नये
सैनिकों को शस्त्रास्त्र का परिचय करायें ।

एसाजी—ठीक है ।

(दोनों चले जाते हैं)

विष्कम्भक समाप्त

(इसके बाद तोरणादुर्ग के उपवन में शिवराज खड़े हैं ।)

शिवराजः—ग्रहो,

अपास्य दूर मलिनान् समस्विभों, क्षणेन तिर्यक् प्रमृतेनंशान्शुभिः
सताप्रतानाघ्निकुञ्जमण्डिता; दिवाकरेणाक्षयिता धनस्थली ॥ २

तथैव स्वातन्त्र्यसूर्येणापि रञ्जितानि सहाचल निवासिना भावस-
जमाना मनासि । संप्रति तेषां चत्वारिंशत्सहस्राणि प्रविविक्तानि मम
सेना निबहम् । किंत्वल्पधनो नोत्सहे तान्विनियोक्तुम् । अपि च द्वीपा-
न्ताराद्विजयाय संप्राप्तं महान्तं शस्त्रास्त्रायुधसमय सार्धसशेणाऽपि
केतुं प्रार्थयते मां फिरङ्गी वशिष्कपति । यदृच्छयोपेतोऽयमवसरो मया
कर्षं गृहीतव्यः । ग्रहो

स्वातन्त्र्यवह्निज्वलितः समन्तत, सह्याचलो मोदयते मनो मे ।

धनेचरान् संन्यगणे नियोक्तुः; न चास्म्यल तां नतरा बुनोति ॥ ३

(पूरतो विलोषय) एष गृहीतसकेतो वीर इत एवाभिसर्पति ।

सूर्य ने अपनी तिरछी किरणों के प्रसार से क्षणमात्र में ही रात्रि
के मलिन अन्धकार को दूर करके लता, घाँसमजरी और निकुंज से
विभूषित वनस्पती को रजित कर दिया । २

उसी प्रकार स्वातन्त्र्य सूर्य द्वारा सह्याद्रि निवासी भावलो का
हृदय हृषित हो उठा है, सप्रति उनसे वालीस हजार जन भेरी सेना में
सम्मिलित होना चाह रहे हैं । परन्तु धनाभाव के कारण उन्हें नियुक्त
करने का साहस नहीं हो रहा है । और दूसरी ओर द्वीपान्तर (विदेश)
से आगत फिरंगी वशिष्कराज डेढ़ लाख रुपये में धनेकानेक महान्
शस्त्रास्त्र क्रय करने के लिए निवेदन कर रहा है । मैं इस शुभ अवसर
का कैसे लाभ उठाऊँ ? ग्रहो—

स्वतन्त्रता की अग्नि से प्रदीप्त सह्याद्रि निवासियों का हृदय,
(सह्याद्रिवासी जिनका हृदय स्वातन्त्र्य प्रकाश से चमक उठा है) भेरे
धन को एक ओर हर्षित कर रहा है, दूसरी ओर भावलो को अपनी-
छिना में सम्मिलित करने की भेरी असमर्थता मुझे सन्तप्त कर रही है ।

(सामने देखकर) सकेतानुसार यह वीर यहीं धा रहा है ।

नेताजी:—(प्रविश्य) विजयतां देवः ।

शिवराजः—अपि चिन्तितस्त्वया दुर्गसंतरणोपायः ।

नेताजी:—प्रथमं तावदादिशतु देवो मां राजमाचीदुर्गं प्रस्थातुम् ।
अल्पैरपि भटैरहं नाशयिष्यामि तद्दुर्गविरोधकणसम् ।

शिवराजः—वीर संप्रति तु कथमपि शस्त्रास्त्रपरिश्रयेणाघिष्ठानवतं
संनाह्य तदजस्य विधातुं स्यापसौकृतानां च दुर्गाणां प्राकारपरिष्ठा-
दिभिर्दृष्टप्रथमंत्वामापादयितुमतीवोत्कण्ठितोऽस्मि ।

नेताजी:—देव युगपत्समुपस्थितानां श्ययसायानां क्रमेण शोधोपपन्नो
विनियोगः । तत्पूवं राजमाचीरक्षण एव तावदात्मानमभिनिवेशयतु
देवः । एवमुत्तरोत्तरविजयेन भविष्यति देवस्य साम्राज्यसिद्धिः ।

नेताजी—(पहुँचकर) विजय हो देव ।

शिवराज—रमा तुमने दुर्ग को विजय करने का उपाय सोचा ?

नेताजी—देव । पहले मुझे राजमाचीदुर्ग की घोर प्रस्थित होने का
आदेश दें । कुछ ही सैनिकों की सहायता से दुर्ग के अवरोधको को
नष्ट कर लूँगा ।

शिवराज—वीर सम्प्रति तो मैं येनकेन प्रकारेण अपनी बतमान
संग्य-शक्ति को सुदृढ़ और शस्त्रास्त्र क्रय कर उसे दुर्जेय बनाने के
लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ । और अपने अधिकार में आये हुए दुर्गों को
चहारदीवारी और छाई आदि के निर्माण द्वारा दुर्लभनीय बनाता
चाहता हूँ ।

नेताजी—देव, समुपस्थित बापों को एक एक करके सम्पन्न करना
ही उचित है । पहले राजमाचीदुर्ग की रक्षा का उपाय करने की
ओर ध्यान दें । इस प्रकार उत्तरोत्तर विजय द्वारा आप एक साम्राज्य
स्थापित कर लेंगे ।

शिवराज — (निश्चय) सर्वथा साधनविकलस्य कुतो मे साम्राज्यसंस्थापनसौभाग्यम् । यत

विना भूति भूत्यगला प्रिय मे विनाऽप्रभित्ति प्रवराइच दुर्गा ।

विना यत् मे प्रयत्नोऽन्तरात्मा सर्वोऽवसोऽर्ति सह प्रवीर ॥४

केवलमिदानीमवशिष्यते धरम विधेयम् । त्वया सह भवान्नी-
मिदिरमुपाश्रित्याभीष्टं तपादपितुमद्य प्रातरादिष्टोऽस्म्यह भगवत्या
परदेवतया । यदि तत्रापि मे भाग्यविप्लवस्तदानीं तु

त्वयैव धीराप्रसरे समथा वि यस्य राष्ट्रोद्धरणवृत्तिम् ।

अकिञ्चनो दण्ड्यपालपाणिं परित्यजिष्यामि परात्मनिष्ठ ॥ ५

नेताजी — देव धमराज्यसंस्थापनोद्धत कृपाणस्य तयास्यात् एवाप
निर्देश । यत

शिवराज—(निश्चयम छोडकर) सर्वथा साधनरहित मुझे साम्राज्य स्थापित करने का सौभाग्य कहाँ ? क्योंकि मेरे सेवक वृत्ति-
(वेतन) के अभाव में अर्द्धे अर्द्धे दुर्ग चहारदीवारी न होने के कारण धीर पति (सैनिक गति) के अभाव में मेरी प्रयत्न अन्तरात्मा के साथ एक साथ ही भंग हो रहे हैं । ४

अब जब मैं बरणीय क्षण यह है कि तुम्हारे साथ मैं आज ही प्रातः काल भवान्नी के मन्दिर में नमस्कर करने आभीष्ट की याचना करें, जैसा कि परमपति इश्वरी का आदेश है । यदि वहाँ भी भाग्य के साथ छोड़ दिया तो—

समस्त राष्ट्र के उद्धारका कार्य बीराप्रवीर तुम्हारे ही ऊपर ही है सर्वशक्तिमान् मैं विना भाग्यरहित दण्ड्यपाल के साथ ही साथ ही बाहर विनयन करूँगा । ५

नेताजी—धमराज्य की स्थापना के लिए कृपाल धारण करने वाले आपके लिए यह विज्ञा का विषय है ही । कनाकि कठिनाई

अन्तरायनिकर्षः परीक्षिताः, प्राप्नुवन्ति मनुजा महत्पदम् ।
विघ्नविश्लेषाधिपो निरस्तथा, ह्येत्यपि निपतन्त्यधीश्वराः ॥ ६

तद् धर्ममवलम्ब्य साम्राज्यसंपादनार्थं यद्व्यतिकरो भव । तद्वानु-
शासनपरेणैव मया वर्तितव्यमित्यादि(टो)ऽस्मि भगवता सिद्धतापसेन ।
न चैतदग्न्या भवितुमर्हति । तद्

अनन्यभावः परदेवतायां, मनः समाधाय सभस्व वाञ्छितम् ।

किमाश्रितः कल्पतर्हं कदाचिन्निवर्ततेकोऽप्यनवाप्त कामः ॥ ७

शिवराजः—वीर सम्यगनुबोधितोऽस्मि ।

अङ्गरक्षक—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

शिवराजः—भवानीमन्दिरमार्गमादेश्य ।

अङ्गरक्षक—इत इतो देवः । (सर्वे परिश्रामन्ति) एतन्मन्दिरद्वारं
सत्प्रविश्यतु देवः । (इति निष्क्रान्तः)

(बाघाएँ) रूपी कसौटी पर खरे उतरने के पश्चात् मनुष्य महान् पद
प्राप्त करता है, विघ्न से शीघ्र व्याकुल होनेवाला सम्राट् भी सरलता
से निम्न पद को प्राप्त हो जाता है । ६

इसलिए धर्म धारण करके साम्राज्य स्थापित करने के लिए
कटिबद्ध हो जायें । मुझे सिद्धतपस्वी का आदेश हुआ है कि मैं आपके
आदेशानुसार कार्य करूँ । यह कभी अन्यथा नहीं हो सकता । अतः परम-
शक्तिमान् मे अनन्य भाव से हृदय को केन्द्रित करके अभीष्ट की पूर्ति करें,
वया बल्पतरु के आश्रित रहकर भी कोई असफल मनोरथ रहा है । ७

शिवराज—वीर, तू ने उचित स्मरण दिलाया । कौन है यहाँ ?

अङ्गरक्षक—(प्रवेशकर) आदेश करें देव ।

शिवराज—भवानी-मन्दिर के मार्ग का निर्देश करो ।

अङ्गरक्षक—श्वर से, इस धोर से देव (सभी घूमकर चलते हैं)
यह है मन्दिर का द्वार, सर्वे देव । (चला जाता है)

शिवराजः—धोर क्षत्र स्थित्या मां प्रतिपालय । पावदहं भगवती-
माराध्य प्रत्यावर्ते ।

नेताजी.—तथा

(इति द्वारदेशमधितिष्ठति)

शिवराजः—(मन्दिरं प्रविश्य ताभ्यु साष्टाङ्ग प्रक्षिपत्य स्तोति)

(कण्ठदिरागोण त्रितालेन गीयते)

तारय तव मुक्तमन्त्र ! भवानि ॥

प्रसन्नमयनरिपुगलितविभावम् ।

प्रसन्नमयोनिधियसुलितनायम्;

पालय परममुद्धानि ॥तारय० ॥ १

त्रिबुधमुने धनुने तव वास ,

विजयरमा ठुतद्विम्बवितासः ।

वारय मम विषभाणि ॥तारय०॥ २

स्थमसि ममेकः परम शरणात् ।

क्षत्तयसि यदि हितभायोद्भरणम् ।

शरय विघ्नशतानि ॥ तारय० ३

वितरति यदि नहि करुणास्तेजम् ।
 घृत्वा ममाटनं पतिवेशम् ।
 निश्चितमपि शर्षणि । ॥ तारय० ॥ ४

(भाकात्री)

मा शुचः सहायसाध्यास्ते सिद्धयः ।

शिवराजः—(भाकार्यं) द्वारसागतवत्सले त्वद्वनुग्रहपरयशा एव मे प्राप्तिरसिद्धयः । (प्रणाम्य द्वारदेशमुपमृत्य) वीर स्वधनीना मे सिद्धयः इति भगवत्या आदेशः । तन्ममाङ्गरक्षकवलेनाक्रम्य बीजापुर प्रदेशा-माहारापेक्षितं हिरण्यसंचयम् ।

नेताजीः—देव पुरोधसिजीर्णदेवात्मकोणप्रस्तरप्रच्यशो महान् निधिस्त्वमोत्प्लातघ्न इति मम पुनरान्तरः प्रत्ययः ।

शिवराजः—न मृषा भवितुमर्हति तथाप्यं प्रतिभासः । यतः

हे शर्षणि ! यदि तुम अपनी करुणा-दृष्टि मेरे ऊपर नहीं डालती तो निश्चित है कि मैं पतिवेश मे भ्रमण करूँगा । ४

(भाकाशवाणी) निराश न हो, सहायकों द्वारा अभीष्ट सिद्ध होगा ।

शिवराज—(शुनवर) हे द्वारसागतवत्सले । तुम्हारे अनुग्रह पर ही मेरे कार्य की सिद्धि निर्भर है । (प्रणाम कर, द्वार पर पहुँच) वीर, भगवती का आदेश है कि मेरे कार्य की सिद्धि तुम्हारे अधीन है । अतः मेरे अंगरक्षक के साथ बीजापुर पर आक्रमण करके अपेक्षित धन आदि एकत्र करो ।

नेताजी—देव, सामने स्थित जीर्ण मन्दिर के कोने में खोदवाएँ तो प्रस्तर से ढकी हुई विशाल धनराशि प्राप्त होगी, यह मेरा गहरा विश्वास है ।

शिवराज—तुम्हारा दृष्टिकोण असत्य नहीं हो सकता । क्योंकि

संपत्तेन्द्रियमनाः प्रसन्नधीः, प्रत्यगात्मनि च यः समाहितः ।
तस्य यत्स्फुरति भाविदर्शनं; नैव तद्भूवति संशयायहम् ॥८
कः कोऽत्र भोः ।

अङ्गरक्षकः—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देव ।

शिवराजः—शिल्पिमुह्यं द्रष्टुमिच्छामि ।

अङ्गरक्षकः—तथा । (इति निष्क्रान्त)

शिवराजः—वीर माघेरानपतीन्द्रवचसा खलु प्रोत्साहितोऽस्मि ।

शिल्पिमुह्यः—(प्रविश्य) विजयतां देव ।

शिवराजः—(जीर्णदेवालयं निर्विश्य) तत्र खनित्वा यदुपलभ्येत
तत्सत्यरमिहोहुर ।

शिल्पिमुह्यः—तथा । (इति खनित्वा भाण्डान्याहृत्य) दिष्ट्याऽ
धिगतान्येतानि द्रव्यपूर्णांनि भाण्डानि निखरतभूमिविवरात् । (इति
स्थापयति)

संपत्तेन्द्रिय, स्थिर और प्रसन्नचित्तवाले व्यक्ति के मन में भविष्य ज्ञान
प्रतिभासित होता है, वह सन्देहास्पद नहीं हो सकता । =

कौन, कोई है ।

अङ्गरक्षक—(पहुँचकर) आज्ञा देव ।

शिवराज—प्रमुख शिल्पी को देखना चाहता हूँ ।

अङ्गरक्षक—जैसी आज्ञा । (कहकर जाता है)

शिवराज—वीर, मैं वस्तुतः माघेरान के यतीन्द्र-वचनो से ही
प्रोत्साहित हुआ हूँ ।

मुख्यशिल्पी—(पहुँचकर) देव की विजय हो ।

शिवराज—(जीर्ण देवालय की ओर सकेत करके) वहाँ खोदकर
जो कुछ भी प्राप्त करो तुरन्त ले आओ ।

मुख्यशिल्पी—जो आज्ञा । (खोदकर भाण्डों को लेकर आता है)
भाग्यवशान् खोदी हुई धरती से द्रव्यो से पूर्ण ये भाण्ड प्राप्त हुए हैं ।
(रख देता है) ।

एसाजी:—अहो दैव्यं सर्वथाऽनुकूलमिति तर्कये ।

तानाजी:—एवमेतर । अन्यथा यद्यं नेताजी सदृशाः प्रवीराः परोक्षे-
ऽपि स्वामिकायं साधयेयुः ।

एसाजी:—(सविस्मयम्) अये किमुच्यते । नेताजी तु यवनसैनिकै-
निहत इति लोकाप्रसिद्धिः ।

तानाजी:—तं त्यपगतचेतनं मत्वा परापृच्छे यवनसैनिकगणो प्रवृत्ति-
भाषन्तः स प्रच्छन्नमुपेत्य मायेरानयतीन्द्रं तदधिगतशस्त्रास्त्रप्रयोगकौश-
लस्तददेशानुरोधेन साम्राज्यसंस्थापनोद्यतं स्वामिभगव्येष्टुं यतिच्छन्नना
राजमाचीदुर्गं प्रतिष्ठत । मार्गे च सदृग्मचरोद्धं नियुक्तस्य बीजापुरसंन्य-
स्य नायकं बन्दीकृत्य

यतिवसनधरो दृढायताङ्गः, प्रयत्नस्याज्वलितः स कुन्तपाणिः ।

नियमितयवनेशसादिजुष्टः; सरभसमेत्य विदेशराजदुर्गम् ॥ ९

एसाजी—अहो, किरतो दैव सर्वथा अनुकूल है ।

तानाजी—हाँ, अन्यथा कैसे नेताजी सदृश वीर स्वामी के कार्य
को गुप्तरूप में रहकर भी संपादित करते ।

एसाजी—(विस्मय से) अरे क्या कहते हो ? नेताजी तो यवन
सैनिकों द्वारा मारे जा चुके, ऐसी प्रसिद्धि है ।

तानाजी—यवन सैनिकों ने उसे मृत जानकर छोड़ दिया, उनके
जाने के पश्चात् जब वह चतन्य हुआ तो प्रच्छन्नरूप से मायेरान-यती
के पास पहुँचा, उनसे शस्त्रास्त्र विद्या में कुशलता प्राप्त की और उनके
आदेशानुसार साम्राज्यसंस्थापनार्थ उद्यत स्वामी को यती के वेश में
हूँदने के लिए राजमाची दुर्ग में स्थित हो गया । मार्ग में उस दुर्ग को
आक्रान्त करने के लिए नियुक्त बीजापुर सैनिकों के सेनापति को
बन्दी बनाकर—

यतिवेश धारण किये हुए, पुष्ट शरीर क्रोध एवं तेज के कारण
भयानक, हाथ में भाला लिए, यवनेश-सैनिक (अश्वारोही) से सेवित
वह बलपूर्वक राजमाचीदुर्ग में प्रविष्ट हुआ । ९

छत्रपतिसाम्राज्यम्

प्रथमोऽङ्कः

उत्तुङ्ग सुरनिम्नगावलयित नानामृगं सङ्कुल,
सश्राममृगयुद्धं हिमवत शृङ्गातरे शृङ्गत ।
सान्द्र विजयाय सखविजितो दिव्य निजास्र दिशन्
पुटमानेष पिनाकपाणिरघतात्नीसाकिरात् शिव ॥ १

उत्तुङ्गमिति—एष, पिनाक, पिनावाख्य घनु पाणौ यस्य स
पिनाकपाणि लीलायाकिरात्, लीलाकिरात्, मृगान् यातीति मृगयु
गिष उत्तुङ्ग, उच्च, सुरनिम्नगावलयित, सुरापगापरिवृत नानामृगं
सङ्कुल व्याप्त, हिमवत हिमालस्य शृङ्गत शिखरात् मयत् शृङ्गं,
शृङ्गान्तर, द्रुत, क्षिप्र, सत्त्वेन, बलौत्वर्षेण विजित प्रसान्ति इत्यर्थं,
घर्जुनाय, पापपुत्राय सान्द्र दिव्य निजास्र पाशुपतास्र दिशन्,
उपदिशन् मुष्मान् रसातु । अत्र शिवपदेन निवराज शृङ्गान्तर शृङ्गत
इत्यनेन नानादुर्गात्रमण, नानामृगं सङ्कुल इत्यनेन नानारिपुणणावशीर्णत्वं
मृगयुपदेन रिपुदलान्सरण, विजयाय दिव्य निजास्र दिशन् इत्यनेन
मन्त्रादिभ्यो, लीलाविगतपदेन च निरानवन् सहाद्विवानन पयटन
सूच्यते । पिनाकपाणिपदेन, धीरसस्याद्भिरवमिति ।

भगवान् शंकर जो लीलापूर्वक (स्त्रेच्छया) निरानवेन घोरण कर,
हाथ में पिनाक (घनुष) लिए, घनव पाशुपा से पूर्ण एव कहर के
सदृश गंगा की लपेटे हिमालय के एव से दूमर (उच्च) शिखर तक
दुर्गात्रि में हरिणो का अनुसरण करते, धीर बलौत्व से समुष्ट होकर,
घर्जुन को विजय के लिए अपना पाशुपा अस्त्र देते हैं—घाय तबही
रहा करें । (तादर्थ्यविधीयते अत्र)

नान्दन्ते

सूत्रधार—(नेपथ्याभिमुखमयलोश्य) आर्ये, अतमतिपरिधमेण ।
इतस्ताववागम्यताम् ।

नटीः—(प्रविश्य) इयमस्मि । आजापयत्यार्यपुत्रः ।

सूत्रधार—अथ खलु नटपुरयास्तस्यमूलशङ्करविरचितेन छत्रपति-
साध्याज्यालयेन नयेन नाटकेनैषा परिपस्तभाजनीया । तत्प्रस्तूयतां
तावन्मल्लाररागेण स्वरतालबद्धा कापि रमणीया गीतिः परिपञ्चेतो-
रञ्जनाय । सम्प्रति खलु—

तपनाशुतपनशमनो ऽ निलचपलश्चञ्चलोल्लसितमेघ-

गर्जति धर्यति विकिरति वनचरनिकरान् प्रसादयति सोकान् ॥ २

नटीः—यदायंपुत्र आजापयति । (इति गायति)

(नान्दी के पश्चात्)

सूत्रधार—(नेपथ्य की ओर देखकर) आर्ये बहुत परिश्रम न
करो । आजाओ, इधर आजाओ ।

नटी—(प्रवेश कर) यह आ गयी मैं । आजा दें आर्यपुत्र !

सूत्रधार—आज नटपुरनिवासी मूलशकर लिखित छत्रपति—
साध्याज्य नामक नवीन नाटक द्वारा इस परिपद् का मनोरजन होना
चाहिए । अतः मल्लार-राग में, स्वर और तालबद्ध कोई सुन्दर गीत,
सभा के मनोरजनार्थ प्रस्तुत करो । इस समय तो—

सूर्य के ताप को शान्त करनेवाले मेघ, वायु के कारण इधर-उधर
धूमते हुए चंचल विद्युल्लता से प्रकाशित होते, गर्जन के साथ
जल-वर्षा करके, वनचर-समूह को तितर-बितर और मनुष्यों को
भ्रानन्वित करते हैं ।

नटी—जो आर्यपुत्र की आजा । (गाती है)

(मल्लाररागेण त्रितालेन गीयते)

रसमति रसयति रसा विज्ञासा ।
 धिबलति चपलपयोधरमाला ॥
 भवति सपदि जनतापविसयनम् ।
 मृग्यति मृगपतिरुपरि निलयनम् ॥ रस० ॥ १
 नमयति तरुगणमलमासार ।
 क्षुभ्यति यजंति पारावार ॥ रस० ॥ २
 मन्दति मुदितो जनपदलोक ।
 जलदविलोकनविगलित शोक ॥ रस० ॥ ३

सूत्रधार—(परिषदभिमुखमवलोक्य) धार्ये, एष स्वामभिनन्दति तव सङ्गीतकलाकौशलेन समाराधितो रङ्ग ।

नटी—धार्यपुत्र यत्सत्यम्

शिष्या यदुत्कर्षमवाप्नुवन्ति,
 प्रभाय एवंप गुरोरमोघ ।

(मल्लार राग में त्रितालबद्ध गीत)

विशाल धरती जल का भूरि-भूरि आस्वादन करने लगी, चपल मेघों का दल इधर-उधर घूम रहा है। तुरन्त लोक का ताप नष्ट हो रहा है, सिंह पर्वत के उच्च भाग में शरणा दूढ़ने लगा। जल-बूदों के भार से वृक्षों का समूह नत हो रहा और विशाल सागर उफाने लगा है। मेघदल को देखने के कारण अपने लोक की विस्मृति कर मनुष्य भ्रान्दिन हो रहे हैं।

सूत्रधार—(सभा को देखकर) धार्ये, यह सभा तुम्हारे इस सगीनकलाचानुरी से भ्रान्दिन हो तुम्हें धन्यवाद दे रही है।

नटी—धार्यपुत्र ! यह सत्य है कि—

दिग्ग यदि उत्कर्ष को प्राप्त होता है तो यह गुरु का धर्मोपप्रभाय ही है,

जात. प्रतापोद्धतकीरवाणा;
कृष्णोपदिष्टो हि जयो विजेता ॥ ३

सूत्रधार—(आकष्यं) धार्ये, शृणु तव गीतप्रकषेणोज्जुम्भितस्य
नवजलधरस्यैतन्मन्दगजितम् ।

नटी—(सस्मितम्) धार्यपुत्र, नास्त्येतन्मेषगजितम् । किन्तु
सम्प्रति भूभारावताराय तपनान्वये शङ्कराशेनावतीर्णः शिवराजः ।
स्वातन्त्र्यभावनया समिद्ध-

पित्रोर्गुरोश्चाधिगताथं विद्यो,
वीरानुरक्तः सवधोभिरायतः ।
स्वराज्य संस्थापननिश्चितप्रती,
गर्जस्य केसरिणः किशोरः ॥ ४
(इति प्रस्तावना)

कृष्ण से उपदिष्ट होकर ही अर्जुन ने ऐश्वर्य के अभिमानी कीरवो
पर विजय प्राप्त की थी ॥ ३

सूत्रधार—(सुनवर) धार्ये सुनो, तुम्हारे गीतराग से आकृष्ट
शुभा नव जलधर मन्द गर्जन कर रहा है ।

नटी—(मुसकरा कर) धार्यपुत्र, यह मेष-गर्जन नहीं है । बल्कि,
धरती के भार को कम करने के लिए इस समय सूर्यवश मे शंकर के
भश से युक्त शिवराज अवतीर्ण हो गए हैं । स्वातन्त्र्यभावना
से समुल्लसित—

पिता और गुरु के समीप में राजनीति का अध्ययन करने वाला,
व्यह, जिसमे वीरो और समवयस्क मित्रो का अनुराग है, (जो वीरो तथा
समवयस्क मित्रो से सनाथ है) स्वराज्य-स्थापना का दृढव्रती,
केसरीकिशोर गरज रहा है । ४

(प्रस्तावना समाप्त)

(ततः प्रविशति ययस्यं सह शिषराजः)

एसाजी—अहो किनु खलु

प्रवर्तित संभ्रुवनंकचक्र—

मूर्जेस्वलंयंमंनयोपवृंहितः ।

ते भारतीया ययनेशमदिता,

नष्टप्रभा घान्त्यभिधानशेषताम् ॥ ५

तानाजी—ययस्य स्वोदर पुरस्कारं ययनेशमुपाधिता ययमेव तत्र कारणम् ।

बाजी—अस्थान एव तवायमुपालम्भः । यतो मिषोविद्वेषविभिन्ना-
नामस्माकं ययनेशाश्रय विना काङ्क्षा गतिः सभाव्यते । सप्रति तु
सरेव मुनिर्घमिता ययं सुरतेन वाच यापयामः ।

एसाजी—उदारचरितास्मन्नुपतिगणान् कूटप्रवर्धस्त्वुल्लय-
ङ्गिस्तैः किं न्यायमाचरितम् ।

(मित्रो सहित शिषराज का प्रवेश)

एसाजी—मोह, ऐसा ययो है कि—

भारतीय, जो यय और नीति ज्ञान मे समृद्ध हो कर भुवन-साम्राज्य
(समस्त महाद्वार) के प्रवर्द्धक अर्थात् समस्त समार के दासता रहे, आज
वही भारतीय जन ययनों मे पीड़ित हो, अपने तैव को तट्ट कर
नाममान को देख रहे गए । ५

तानाजी—अपने उदर की पूर्ति (स्वार्थ-साधना) हेतु ययनों के
उदासता (घात्रित) हम स्वयं हमने कारण है ।

बाजी—यह भावना उदासता उचित नहीं है । क्योंकि अब पार-
दारिक विद्वेष-भावना मे हम घात्रण मे ही बल्लव करने हैं तो ययनों की
घरल के अतिरिक्त हमारा धर्म श्री बौध है ? इन समय तो हम उन्हीं के
निर्ग्रहण मे गुण से समय बिता रहे हैं ।

एसाजी—क्या अपनी कूटनीति द्वारा उन्होंने हमारे उदारचरित
समर्थों का मूर्खोद्देश कर उचित किया ?

बाजी — न सत्यप्रकांतेन बोधभाजो यवनेश्वराः । यतः

परस्परोन्मूलन सप्रवृत्तान,
विहाय धर्मं विषयेषु सत्तान् ।
निर्यं प्रजास्वापहरान्नुपालान्,
निगूह्य तैर्गर्ह्यमनुष्ठितं विम् ॥ ६

एसाजी — धरे किमेव भ्रान्तोऽसि । धर्मच्युतानेताश्चिगूह्य कि धर्मराज्यं स्थापित यवनेश्वरैः । एतेषामपचारपरंस्मरणेन जायते मे रोमहर्षं । समाननमिषेण राजसभामुपस्थापितस्य सात्मजस्य जाधवरावस्थानाण्डवधेन प्रज्वालित श्रोधानतोऽद्यापि सर्वत्र गूढ प्रज्वलति ।

बाजी — स्वकृतघ्नताया एव फलमुपभुक्तं जाधवरावेण । यवने-
श्वरस्तु तत्र निमित्तमात्रम् ।

बाणी—इस सन्दर्भ में यवनशासक ही केवल दोषी नहीं हैं
क्योंकि—

पारस्परिक द्वेष के कारण एक दूसरे का विनाश करने में रत,
धर्मानुसरण का मार्ग त्याग भोग-विलास में अनुरक्त, अपने कर्तव्य से
विरत, निर्य प्रजा के धन का दुहणयोग करने वाले नरेशों का नाश
करके उन्होंने अनुचित क्या किया ? ६

एसाजी—यह आप कैसे भ्रम में पड़ रहे हैं ? क्या इन यवनों ने
हमारे धर्मच्युत राजाओं का भक्त करके धर्मराज्य स्थापित किया है ?
इनके अत्याचार-परम्परा के स्मरणमात्र से मुझे रोमाच हो जाता है ।
सम्मान देने के ब्याज से सभा में उपस्थित किये गये पुत्र-सहित जाधवराव
के अचानक वध से प्रज्वालित श्रोधानल आज भी सर्वत्र भली-भाँति
जल रहा है ।

बाजी—अपनी कृतघ्नता का ही फल जाधवराव को मिला । यवन-
राज तो उसमें निमित्त मात्र रह ।

शिवराज—वयस्या, अल वचनप्रतिवचने । परमार्थतस्तु न केवल-
मेकान्तेन धोषभाजो दुर्वृत्ता यवनेश्वरा किन्तु तस्सधर्माण इदानीं तमा
राष्ट्रद्रोहं क्षत्रेश्वरा अपि । यतः

दुर्वृत्ते नृपतौ तु मंत्रिसचिवास्तपक्त्वा नियोगनिज,
स्वच्छन्दं विहरन्ति कामवशया उद्वेजयन्तः प्रजा ।
राष्ट्रोपप्लवशङ्कयाऽन्यनृपतिं सद्यः शयन्ते जना,
कालोनापचयेन कोशवलयो राष्ट्रं ततो नश्यति ॥ ७

तद्वयस्या

उद्धर्तुमेना परिपोडितां भुव,
धर्मच्युतं उन्मदराज संघं ।
साम्राज्य संस्थापनमन्तरेण,
न वर्ततेऽन्याऽर्थकरी प्रतिश्रिया ॥ ८

अपि चाततायिभ्य स्वप्रजानिविशेष प्रजाना परिपालनमेव सर्वत्र
राजा परमोधर्म । अतो धर्मराज्यसंस्थापनोद्यतस्य मम—

शिवराज—मित्रो, वाद विवाद समाप्त करो । सत्य तो यह है—
केवल यवन-शासक ही दोषी नहीं हैं अपितु राष्ट्रद्रोही क्षत्रियनरेश भी
उन्हीं के समानधर्मी हैं । क्योंकि—राजा के दुर्वृत्त हो जाने पर मंत्री,
सचिव सभी अपना कर्तव्य भुला देते हैं—स्वतन्त्र हो जाते हैं और विलास-
साधन में रत प्रजा को पीड़ित करने लगते हैं । प्रजा विप्लव के समय से
अन्य राजा का आश्रय लेती है और इस प्रकार धीरे-धीरे कोश, बल,
राष्ट्र नष्ट हो जाता है । ७

इसलिए मित्रो—इस भूमि को धर्मच्युत, उन्मद शासकों के भ्रत्याचार
से मुक्त करने के लिए स्वतन्त्र साम्राज्य-स्थापना के अतिरिक्त अन्य
कोई श्रेयस्कर मार्ग नहीं है । ८

और सर्वत्र भ्रत्याचारियों से प्रजा का अपनी औरसु सन्तान की
भक्ति पालन और रक्षा करना राजा का परम धर्म है । अतो स्वराज्य
संस्थापना के लिए उद्यत मेरे द्वारा—

दुर्गं स भूत्वाहित राज्यभारा,
 प्रजाद्रुहश्चार्यपरा. कुशीला. ।
 क्षत्रेश्वरा या ययनेशरा या,
 सद्यो भविष्यन्ति कृपाणगोचरा ॥ ६

बाजी—कुमार, अभावसमाकुलो हि बलवता विरोधः । यतः
 विना विवेकं प्रतिपद्य सत्स,
 परादकपं किल यश्चिकीर्यति ।
 विपद्विभिन्न स जनोऽल्पसाधन,
 क्षब्धानंधे नीरिव सीदति स्वयम् ॥ १०

शिवराज—वयस्य, साहसेन एव श्री प्रतिष्ठिता । यत
 रिपुप्रकर्षे ऽप्यनपागतधृति—
 जितेन्द्रिय साहस विक्रमोजित ।
 दिवानिश यः सतत प्रयत्नवा—
 स्तमेव सद्यो वृणुते नृपथीः ॥ ११

वे समस्त राजा, (क्षत्रिय अथवा यवन) जो प्रजा का द्रोह करने वाले, दुवृत्त में रत, स्वार्थसाधन में तत्पर, मनीषिणाभी हैं, क्षीघ्र मेरे कृपाण के ग्रास बन जायेंगे । ६ ✓

बाजी—कुमार, बलवान् से विरोध लेना हानिप्रद होता है । क्योंकि विवेकहीन यदि कोई साहस के सहारे शत्रु को अल्प साधनो से पराजित करना चाहता है, वह उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे महासमुद्र में उफान आने पर नौका नष्ट हो जाती है । १०

शिवराज—मित्र, साहस से श्री की प्रतिष्ठा है (श्री की प्राप्ति होती है) क्योंकि—राजलक्ष्मी उसी का वरण करती है जो शत्रु के अभ्युदय में भी धैर्य और साहस नहीं छोड़ता, जो जितेन्द्रिय, सतत प्रयत्नशील तथा जो बल-विक्रम का स्थान है । ११.

पुराऽपि साहसेनैव स्वायत्तोक्त स्वपितृपंतामहं राज्य
पाण्डुनन्दनः ।

एसाजी—अग्ने तेजस्विना तु साधननिरपेक्षैव साध्यसिद्धि । यत्
स्वल्पोऽभ्यग्निर्ज्वलयति न किं काननं जलसस्थ,
मत्संभेन्द्रान्निवदति न किं लीलया सिहशाव ।
धालोऽभ्यर्को विकिरति न किं ध्वातमारात् क्षणेन,
सबंश्रवाप्रतिहतस्यस्तेजसा हि प्रभाव ॥ १२

तानाजी—कुमार तेजस्विनामपि साहाय्यमन्तरेण तु सशमितेय
कार्यसिद्धि । परन्तु

यथा समन्तात् सरित प्रवाह,
स्रोतासि सर्वाणि समाविशन्ति ।
तेजस्विन लोकहितैकनस्पर,
तथा स्वय वीरगणा धमन्ते ॥ १३

प्राचीन समय में भी पाण्डवों ने अपने पूर्वजों के राज्य पर साहस से
ही अधिकार किया था ।

एसाजी—तेजस्वियों को तो साधन न होने पर भी कार्य-सिद्धि ही-
जाती है । क्योंकि

तेजस्वियों का प्रभाव सबत्र ही अप्रतिम होता है—यथा अग्नि वा
एक वण भी पर्वतस्थित जगल को भस्म नहीं कर डालता ? क्या छोटा-
सा सिंह-शावक मत्स हाथी को विदीर्ण नहीं करता क्या बाल सूर्य घने
अन्धकार को क्षणमात्र में नष्ट नहीं कर डालता ? १२

तानाजी—कुमार, तेजस्वियों के लिए भी साहाय्य के प्रभाव में
कार्यसिद्धि सहाय्यात्मक ही होती है । परन्तु—जैसे नदी के प्रवाह में
धारा और से स्रोत आकर प्रवेश करते हैं उसी प्रकार लोन्हित में
सत्पर तेजस्वी व्यक्ति का धनुस्तरण वीरगणा स्वयं किया करते हैं । १३

शिवराज—नास्त्यत्र विसंवाद । लोकाहिततत्परस्य तु सन्ति
निसर्गसिद्धा । सहाय्य तद्भयद्भिः प्रकल्पितैरुपायविशेषैरहं

साहाय्यमासाद्य महद्बुनोक्ततां,
ध्रुव विजेरथे यवनेशमुन्मदम् ।
रघूद्वहाभ्या कपित्सेनया न किं,
दशाननस्यापि वृत्ता यन्न्यता ॥ १४

अनुचर—(प्रविश्य) विजयतां कुमार । स्वभगिनीमायुत्तस्य ग्राम
प्रापयन्त मेताजी माँ समाक्रम्य सयान्धस्य च त निर्यापयता तस्य
भगिनी बीजापुरसंनिधेः । (इति निष्क्रान्त)

साहाय्यमिति—वने शोक निवासः येषां तेषां वनोक्ततां मायतेज-
नाना, महत् साहाय्यमासाद्य प्राप्य, उन्मदमुन्मत्त यवनेश बीजापुरेश
ध्रुव निश्चयेन विजेरथे ; रघूद्वहाभ्यां रामलक्ष्मणभ्यां कपित्सेनया
दशाननस्य रावणस्य, धनि यन्न्यता किं न वृत्ता । अपितु वृत्तैव । यदि
रामलक्ष्मणभ्यां कपित्सेनया दशाननो निहित सदा वय सर्वे मिलिरया
मानवसेनया एकानन बीजापुरेश ध्रुव विजेरथामहे इति ।

शिवराज—इसमें कोई मतलब नहीं है । आप लोग सहमत हैं कि
लोकाहितार्थी व्यक्ति को स्वयं ही सहायक और महायत्ना की प्राप्ति हो
जाती है । अतः मैं आप लोगों द्वारा समर्थित उपाय से ही—

वनवासी मायतों की सहायता से निश्चित रूप से बीजापुरनरेश
पर विजय रहेंगा, वरदा राम-लक्ष्मण ने कपिसेना की सहायता से
दशानन रावण को निरविनीत नहीं कर दिया था । १४

अनुचर—(प्रवेष्टुं) कुमार । अयं हो । अयं भगिनी को गाँव
से आते समय, सयान्धस्य मतेन मेताजी को बीजापुर के संनिधेः नै मां
आसा और उनकी भगिनी का अपहरण कर गया । (गता गता है ।)

शिवराज—(सरोपम्) अरे कथमेतादृशमत्याहितं क्षत्रकुलप्रसू-
तैररुमाभिर्मर्षणीयम् । वयस्या

भ्रातॄणां परिपालनाय सहसा शस्त्रं न येनोद्धृतं,
विप्राणां व्रतिनां च वेदविदुषामाराधने न स्थितम् ।

राजामुत्पथगामिनां प्रमथने युद्धं न चंचादृतं,
क्षेत्रं जन्मं धिगस्थं राघवयज्ञं प्रज्वालिते भारते ॥ १५

तदद्य धर्मराज्यस्थापनेन संपादनीयमस्मज्जीवितसाफल्यम् ।

एसाजी—अभिनन्द्यते कुमारभाषितम् । (दूरं विलोक्य) एष
दादोजी देशमुख इति एषाभिर्वर्तते ।

भ्रातॄणामिति—येन भ्रातॄणां पीडितानां परिपालनाय रक्षणाय
शस्त्रं न उद्धृतं येन च वेदविदुषां वेदविदां व्रतिनां ब्रह्मचर्यादि व्रतनिष्ठानां
विप्राणां आराधने न स्थितं, येन च उत्पथगामिनां मुग्धांगप्रवृत्तानां राजा
प्रमथने विनाशे युद्धं न आदृतमस्य क्षेत्रं जन्मं रामस्य यज्ञसा प्रज्वालिते
प्रकाशिते भारते धिक् निन्द्यमेवेत्यर्थः ।

शिवराज—(रोप सहि) भोह ! क्षत्रियबुलौद्भूत हम् लोग इस
अपराध को कैसे क्षमा कर सकते है । मित्रो—

पराशमी राम के यज्ञ से प्रज्वलित इस भरत भूमि में जन्म लेनेवाले
उस क्षत्रिय का जन्म ही व्यर्थ है, वह सर्वथा निन्द्य है—जिसने भ्रातॄं
की पुकार कर सुन उसके रक्षणार्थं तुरन्त शस्त्र नहीं उठाया, जो वेदज्ञ,
अती ब्राह्मणों की आराधना में प्रवृत्त नहीं हुआ और जिसने अनीतिपालक
अनाचारी राजा के विनाशार्थं युद्ध का उपशम नहीं किया । १५

अतः हम लोग धर्मराज्य की स्थापना करके अपने जीवन को
सफल बनायें ।

एसाजी—हमें स्वीकार है कुमार । आपके कथन का हम अभिनन्दन
करते हैं । (दूर देखकर) दादोजी देशमुख यही था रहे हैं ।

दादोजी — (प्रविश्य) अग्र्यनामय कुमारस्य ।

शिवराज — स्वागत देशप्रमुखप्रवरस्य । समन्तात् प्रवृत्ते लोक-
विप्लवे बुतोऽनामय क्षत्रियाणाम् ।

दादोजी — तस्यमेवाभिहित कुमारेण । यतो लोकाप्रहार्यमेव
ध्रियन्ते क्षत्रियस्य प्राणा । कुमार स्वदधीन एवास्त्यस्य महतः
कार्यस्योपक्रमः । तद्भूविशयाम्यहमत्र यावज्जीव तव सहाय ।

शिवराज — अनुगृहीतोऽहं भवता सौजन्येन । ययस्या प्रथम
तावदस्माभिर्वीजापुरेण हस्तगता सहाद्रिदुर्गा कथमपि
स्वायत्तीकर्तव्या ।

बाजी — प्रचुर कौशयलाद्द्योऽयं धर्तते बीजापुरेश्वर । तत्
शक्तित्रयोत्सर्षं समेषितानां,
समाप्तुपायं परिरक्षितानाम् ।

दादोजी — (प्रवेश करके) कुमार कुशल है न ?

शिवराज — देशमुख-कुल शिरोमणि का हम स्वागत करते हैं ।
संबंध जब लोकविप्लव उपस्थित हो तो क्षत्रिय को विद्याम कहीं ?

दादोजी — कुमार । सत्य कह रहे हैं । क्योंकि लोकसप्रहार्य
ही क्षत्रियो ने प्राण धारण किया है । इस महान् कार्य का उपक्रम
आपके ही अधीन है कुमार । अतः हम जीवन पथन्त आपके इस कार्य
में सहायक रहेंगे ।

शिवराज — आपके सौजन्य के लिए हम आभारी हैं । मित्रो, सर्व
प्रथम, बीजापुरनरेश द्वारा हस्तगत सहाद्रि-दुर्गों को अपने अधिकार में
करना चाहिए ।

बाजी — बीजापुरनरेश प्रचुरकोश एव शक्तिशाली है । अतः तीनों
शक्तियों के उत्कर्ष से समृद्ध, साम, दाम, दण्ड, भेद चारों उपायों से

पाङ्गुण्ययोगोन्मथितद्विधा कि,
षिट्ठेयत श्रेय उपाश्रयेम् ॥ १६

एसाजोः—वलवताप्यभिभवायोञ्जम्भते परा संघशक्ति । यत.

प्रभायसुरया न हि शजयस्तया
संपादयन्तोप्सितकार्यं सिद्धिम् ।
यथा रिपौ कोशवलप्रमत्ते,
नयप्रयुक्ता परसंघशक्ति ॥ १७

तानाजोः—उदात्तघरितानामैव परिपन्थिनामभियोग उपयुक्ता
एता शक्तयो न स्वघनानाम् । अपि च

मन्त्रगुप्तिविरहाद्गणसंघो,
मुक्तितस्तु भवत सुखमेघो ।

प्रभावेति—प्रभाव मुख्य प्रदान. यामु ता. प्रभुमन्त्रोत्साहशक्तय.
कोशदलाभ्या प्रमत्ते रिपौ तथा ईप्सितकार्यनिर्दिष्ट न सपादयन्ति यथा
नयेन अर्थशास्त्रविहितरीत्या प्रयुक्ता परा उत्कृष्टा बासो सघशक्तिश्च
कार्यं सपादयन्तीत्यर्थ । १७

रक्षित घोर राजनीति के उद्दह गुणो के महारे भगने शत्रु को पराजित
करनेवाले शक्तिशाली से मनुता करके हमे क्या लाभ होगा ?

एसाजो—सब शक्तियों से उत्कृष्ट सघशक्ति शक्तिशाली को भी
पराजित होने के लिए विवग कर सकती है—क्योंकि, कोशवल से प्रमत्त
शत्रु के लिए तीन शक्ति । (मन्त्रोत्साहादि) उठनी प्रभावक नहीं है
जितनी कि नीति-विहित गठित सघशक्ति । १७

तानाजो—ये शक्तियाँ तो उदारवर्तित शत्रु से तयर्थ करने के लिए
उपयुक्त है न कि घ.म शत्रु के लिए । घोर भी—मन्त्र भेदादि की
सहायता से बेबस दानिय, बलिष् आदि क गण को विच्छिन्न करना

माययाऽधमपरप्रतिघात ,
 श्रेयसे नयविदा नृपतीनाम् ॥ १८
 तत्पञ्चमोपायमात्रसाधया भविष्यन्त्यधमारातय ।
 शिवराज —ममाप्येतदेवास्त्यभिमतम् । यत
 परे तु तेजस्विनि धर्मवृत्तौ,
 सामाद्युपाया सफला भवन्ति ।
 न विद्यते दुर्नेयशालिना जये,
 मायाप्रयोगादपरा प्रतिक्रिया ॥ १९

अपि च

धर्मत [प्रतिविधानमात्मनो,
 द्विप्लवाय धृजिनावृते रिपी ।
 विष्णुनाऽपि धलिन सुरद्विष,
 घातितः प्रतिपुत्र स्वमायया ॥ २०

मन्त्रेति—गण क्षत्रियाणां, क्षत्रिजा, वा, सध जानपदानां तो
 मन्त्रस्य गुप्ते रक्षणस्य विरहात् मन्त्रभेदादित्यर्थं युक्तिन सामाद्युपायं
 सुखभेद्यो भवत । घत मायया, छलप्रयोगं अधमं य पर रिपु तस्य
 प्रतिघात नयविदा नृपतीनां श्रेयसे भवतीत्यर्थं ॥ १८

सहज है परन्तु अधम दानु से मुवाबला करने के लिए नीतिज्ञ नृपति
 द्वारा छल, माया का सहारा लेना परम श्रेयस्कर है । १८

अत अधम दानु का विनाश पञ्चमोपाय माया आदि से ही
 साध्य होगा ।

शिवराज—मेरा भी अभिमत यही है । क्योंकि—धर्मवृत्तिवाले
 तेजस्वी दानु के समक्ष ही सामदामादि उपाय सफल होते हैं और दुर्नीति-
 गामी दानु पर विजय प्राप्त करने के लिए माया प्रयोग के अतिरिक्त
 अन्य उपाय नहीं है । १९

और भी—पापवृत्ति दानु के विरुद्ध धर्मनीति वा व्यवहार स्वविनाश
 का कारण होता है—भगवान् विष्णु ने भी यलशाली असुरों के
 विनाश के लिए अपनी माया का प्रयोग हमेशा किया था । २०

सर्वे—सर्वथा अभिनन्द्यते कुमारवचनम् ।

शिवराज—सर्वेषु भवन्मन्त्रिपदमारुढोऽहमद्य प्रतिजाने यत्
मान धन राजविलासभोगान्,
मित्राणि दारानपि जीवित च ।
हृत्वा रिपुञ्चालितहृत्पवाहने,
सस्यापयित्ये मम धर्मराज्यम् ॥ २१

सर्वे—कुमार, एतद्भोष्मप्रतिज्ञासिद्धये बद्धपरिकरानहमान्
दुर्भेद्यदुर्गक्रिमशो प्रयाशो,
रणाङ्गणे दुष्करसाहसे वा ।
अवेहि राजस्तव पार्श्ववर्तिन,
स्वजीवितेऽस्मिन्निरपेक्षता गतान् ॥ २२

शिवराज—वयस्या भविष्यन्ति भवन्त एवाधिकारपदभागिनी
मम धर्मराज्ये । यत्

सभी—कुमार का वचन सर्वथा अभिनन्दनीय है ।

शिवराज—अत आपका मित्र मैं घोषणा करता हूँ कि शत्रु के
द्वारा प्रज्वालित रणरूपी अग्नि मज्ज में मैं अपने मान, सम्मान, धन,
भोग विलास, मित्रो, पत्नी और प्राणों तक की प्राहुति देकर अपने
धर्मराज्य की स्थापना करूँगा ॥ २१

सभी—कुमार, आपकी इस भोष्मप्रतिज्ञा की सिद्धि-हेतु हम
बटिबद्ध होकर—

दुर्भेद्यदुर्गों के ऊपर आक्रमण करते समय, रणांगण में प्रस्थान-
समय अथवा अन्य दुष्कर एव साहसी कार्यों में, राजन् । अपने प्राणों
तक की चिन्ता बिना किये आपके पार्श्ववर्ती रहेग, ऐसा समझें ॥ २२

शिवराज—मित्रो, मेरे धर्मराज्य में आप सब अधिकारपद के
भाग्यी होंग । बयोर्हि—

समानविद्यानयविक्रमेषु ,
 राष्ट्रकभक्तिप्रयिनान्वयेषु ।
 जितेन्द्रियेष्वेव निजाधिकारं ;
 विभज्य साम्राज्यमुपति भूमिषु ॥ २३

(तत्त प्रविशत्यपटोभेपेण दादाजीकोंडदेव)

शिवराज — (सप्रश्रयन्) स्वागत भगवत ।

दादाजी—वस्तु, विरमास्मात्साहसाध्यवतायात् । एष कुलप्रमा-
 गतवृत्तिपरिरयाणात्तु तवानर्थापत्तिरेवेति तर्कये ।

शिवराज — भगवन् यदनेशबिद्वेषप्रभवादनयंशतादपि श्रेय एवेति
 मे बलवान् प्रश्रय । मत

धर्मोति—धर्मस्य ध्वस्त. विनाश तदर्थं घृतं व्रत यै. तान् पश्यने
 सुवधान् मृदो निर्दयान् क्रूरान् विक्रमशालिनि मन्दान् नम्रान् प्रतिभटे
 भूटप्रयोगैः छलप्रयोगैः उत्पटान् उग्रान् स्वस्मिन् विश्वस्ते अपि हिंसकान्
 वधोद्यतान् कुलवधूना सकर्षणैः अपहरणो सोत्सवान् गोविशेषु अपचारिण.
 देवद्विष इमान् यवनेश्वरान् वयमह सधये ।

विद्या, नीति, पराक्रम, राष्ट्रभक्ति, प्रतिष्ठित कुल मे उत्पन्न
 जितेन्द्रियों मे अपने अधिकार का समान विभाजन करनेवाला राजा ही
 साम्राज्य सत्ता को सुदृढ़ कर सकता है । २३

शिवराज—(नम्रता से) आपका स्वागत है ।

दादाजी—वस्तु, इस दुस्साहसपूर्ण प्रतिज्ञा को छोड़ दो । इस प्रकार
 कुलप्रमागत वृत्ति के परिरयाग से आपने ही धर्म की सम्भावना ही
 सकती है ।

शिवराज—भगवन्, राजाः धर्मों को उत्पन्न करनेवाली भी
 यवनेश की यह शत्रुता हमारे लिए श्रेयस्कर है । क्योंकि—

शिवराज —सप्रति प्रभविष्याम्यहं सनाहयितुं मम धीरनिब्रह्मन् ।
यय क्रियत्परिमाणोऽय निधि परिकल्प्यते ।

नेताजी —देव, पर्याप्त एवायमस्मत्प्रयोजनाय ।

मणिकार —(प्रविश्य) विजयतां देव ।

शिवराज —भवधार्थतामस्य कोशसचयस्य मूल्यपरिमाणम् ।

मणिकार —(निरीक्ष्य) देव सूक्ष्मानेनाय दशसहस्रिष्यार्थं
भवितुमर्हति ।

शिवराज —तावत्पत्र आरोप्य विस्तरेण दशधास्य मूल्य परिच्छेद-
व्यञ्जक परिसंख्यानम् ।

मणिकार —तथा । (इति यथोक्तं कुरुते)

शिवराज —वीर महानेपोऽनुग्रह परदेवताया । यत् सप्रति
सखु मम ।

शिवराज—भव मैं सेना तैयार करने योग्य हो गया । तुम इस
निधि को कितने मूल्य की अनुमान करते हो ।

नेताजी—देव, हमारे प्रयोजन के लिए यह पर्याप्त है ।

मणिकार—(पहुँचकर) विजय हो देव ।

शिवराज—इस धनराशि का मूल्य अनुमान करो ।

मणिकार—(निरीक्षण करके) भलीभाँति निरीक्षण करने पर
यह लगभग दस लाख मूल्य का प्रतीत होता है ।

शिवराज—इसके मूल्य का परिमाण मुझे विस्तार से लिखित रूप
में दे दो ।

मणिकार—जो आज्ञा । (कथनानुसार करता है)

शिवराज—वीर, शक्तिमान का परम अनुग्रह है यह । क्योंकि इस
समय मेरी—

शास्त्रास्त्रसमद्वरणोत्सुका भटा , सद्य पराहत्य परप्रवीरान् ।

अत्युत्कट समविदारण द्विषा प्रकाशमिष्यन्त्यतुल पराभ्रमम् ॥१०

अङ्गरक्षक —(प्रविश्य) एष द्विभायसमेत फिरङ्गी वेव द्रष्टुमिच्छति ।

शिवराज —शीघ्रमेव प्रवेशय ।

अङ्गरक्षक तथा । (इति निष्क्रान्त)

द्विभाय —(फिरङ्गीं निर्दिश्य) एष महाराज सुप्रभातमावेदयति ।

शिवराज —प्रोतोऽस्यस्य समुदाचारेण । प्रीतो मया सार्ध-
सक्षेणोपुषसचय इति तमावेदय ।

द्विभाय .—तथा । (इति यथोक्त कुर्वते)

शिवराज —अपि सुव्यवस्थितोऽय व्यवहार ।

द्विभाय —अय किम् । एष पुनमहाराजस्थानुप्रहमभिनन्द्य गम-
नायानुभां याचते ।

सेना के वीर जो युद्ध करने के लिए सज्ज हो गए और उत्सुक है, शास्त्रास्त्रों से सज्जित हो अपने पराक्रम को अधिक सफलता से दिखाना सकेंगे और उनका शीघ्र शत्रु के अन्त को विधीन करेगा ॥१०

अङ्गरक्षक—(प्रवेश कर) द्विभाय के साथ विदेशी, देव का दर्शन चाहता है ।

शिवराज—तुरन्त उपस्थित करो ।

अङ्गरक्षक—जो भाषा । (जाता है)

द्विभायो—(विदेशी को दिखाकर) यह महाराज को प्रात का तमस्कार निवेदन कर रहे हैं ।

शिवराज—मैं इसके व्यवहार से प्रसन्न हूँ । वह दो कि मैंने इसके शास्त्रास्त्रों को डेढ़ सास में खरीद लिया ।

द्विभायो—अस्तु जो आदेश । (बहुता है)

शिवराज—क्या यह व्यवस्था मान्य है ?

द्विभायो—जी हाँ । आपके अनुग्रह का आभार मानते हुए जाने की आज्ञा चाहते हैं ।

मणिकार — (उपसृत्य) एतत्सविस्तर परिस्स्थानम् ।

(इति पत्रमर्पयति)

शिवराज — (पत्रमादाय वाचयित्वा) द्विभाष आगामुकमभ्यापुथ-
सचय वयमेव क्लेश्याम इति वणिकरतिमधगमय ।

द्विभाष — तथा । (इति यथोक्तं कुरुते)

शिवराज — अथे मणिकार आपर्येतायावेशिकमन्दिरम् । महचना-
च्चोच्यतां सत्राधिकृतोऽध्यक्षो षडय वैदेशिक सपरिवारमातिष्येन
सम्माननीय इति ।

मणिकार .— तथा (इति निष्क्रान्तास्त्रय)

शिवराज — क वोऽत्र भो ।

अगरक्षक — (प्रविश्य) आज्ञापयतु देव ।

शिवराज .— मत्रगृहमार्गमादेशय ।

मणिकार—(आकर) यह सविस्तर तालिका है । (पत्र देता है)

शिवराज—(पत्र लेकर धीरे पढ़ने के बाद) द्विभाष । वणिकरति
को सूचिन कर दो कि हम इनमें से घोर भी वास्त्रास्त्र खरीद लेंगे ।

द्विभाषी—जैसा आदेश । (उससे कहता है ।)

शिवराज—मणिकार, इन दोनों को प्रतिधिभवन में ले जाओ ।
भरी घोर से अध्यक्ष को निवेदन करो कि यह विदेशी सपरिवार राज्य
अतिथि के रूप में सम्मानित किया जाय ।

मणिकार—जैसी आज्ञा । (तीनों चले जाते हैं)

शिवराज—कौन, कोई है ?

अगरक्षक—(प्रवेशकर) आज्ञा देव ।

शिवराज—मत्रगृह का मार्ग निर्देन करो ।

मंगरक्षक :—इत इती देवः । (सर्वपरिक्रामन्ति) एतन्मंत्रगुहद्वार
प्रविशतु देवः सानुगः । (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति मंत्रगुहावस्थिता मंत्रिणः)

शिवराज :—(प्रविश्य) मंत्रिण दिष्ट्या सपन्नोऽस्माकं मनोरथः ।

मंत्रिणः—(उत्थाय) यद्यतां देवोऽभीष्टसम्पदा ।

(इति शिवराजमनु सर्वे उपविशन्ति)

शिवराज :—सचिव स्वं सायदविलम्बेन निर्माय नूतनं दुर्भेद्य-
प्राकारादि परिवेष्टितं राजगडदुर्गमापादयास्य राजधानीयोग्यताम् ।
यावत्तत्र स्थिता यम राजकर्षाणि पश्येम ।

सचिव —यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराज :—धीर स्वमपि फिरङ्गिणः क्रीतैरामुर्धं संनाह्य माव-
ल्लेजनवाहिनीं कल्याणजयायंस्माभिर्नियुक्तमावाजीधीरं संप्रतिपद्यस्व ।
सद्य एव

मङ्गरक्षक—इधर से देव, इधर से । (सभी चलते हैं) यह मंत्रणा-
गुह का द्वार है, साधारणों सहित प्रवेश करें देव । (चला जाता है)

(उसके पश्चात् मंत्रणागुह में मंत्रिण वंटे दिखायी पड़ते हैं)

शिवराज—(प्रवेश कर) मंत्रियों भाग्य से हमारा मनोरथ
पूर्ण हुआ ।

मंत्रिण—(बैठकर) देवका मनोरथ पूर्ण होता रहे । (शिवराज
के बैठने के बाद सभी बैठते हैं ।)

शिवराज—सचिव, तुम धीमे ही प्राकारादि से घिरे हुए दुर्भेद्य
एक नवीन दुर्ग राजगड का निर्माण कर उसे राजधानी के योग्य संवार
करो । हम उस दुर्ग से राजकार्य देखेंगे ।

सचिव—जैसी आज्ञा देव । (बहकर चला जाता है)

शिवराज—धीर, तुम भी तुरन्त ही विदेशी मणिक से खरीदे हुए
राम्यास्त्रों से मादसो की सेना संवार करके, कल्याण विजय के लिए
श्रेष्ठ कवाजी धीर से जाकर सम्मिलित हो जाओ । तुरन्त ही

सुतोक्षणभरुसासिघनु समूजिता, विशासदूखीपरिणद्धपादुर्वा ।
 स्वातंत्र्यसम्भावनया समेधिता, प्रयान्तु मे वन्यपदातिसघा ॥११॥
 नेताजी —यहैव आज्ञापयति । (इति निष्क्रान्तः) ।

शिवराजः—धर्माय, स्वयि विनिहित राज्यभारोऽहमपि
 सावरसेनानायकेन सह कोंकणजयार्थं प्रतिष्ठे । तदवेकस्वाक्षप्रभृति
 सर्वाणि राजकार्याणि ।

साम्राज्यीः—यदाज्ञापयति देव । (इतिनिष्क्रान्ता, सर्वे)

समाप्तोऽयं निधिसंप्राप्तिनामा

द्वितीयोऽङ्कः



सीकण भालों, कृपाणों, धनुषों से प्रबल, कटि-प्रदेश में सुखीर
 (तरकम) कसे हुए, स्वातंत्र्य भावना से भली भाँति प्रोत्साहित, वन्य-
 जनो (वनवासियो) की हमारी पैदल सेना प्रस्थान कर रही है । ११

नेताजी —जैसी देव की आज्ञा । (चला जाता है)

शिवराज—धर्मिन् राजकाज का भार तुम पर छोड़कर मैं भी
 सेनानायक के साथ कोंकण-विजय के लिए प्रस्थित हो रहा हूँ । इसलिए
 आज से सभी राजकार्य की व्यवस्था करो ।

साम्राज्यी—जैसी आज्ञा देव । (सभी जाते हैं)

निधिसंप्राप्ति नामक

द्वितीय अंक समाप्त



तृतीयोऽङ्कः

(सतः प्रविशति राजगडदुर्गप्रासादावस्थितो मन्त्रिद्वितीयः शिवराजः)

शिवराजः—मन्त्रिन् सुख्यवस्थितेऽपि राज्यतत्रे कथमद्यापि
निधुंति न व्रजति मेऽतरात्मा ।

रात्रिदिव रिपुगणान् शतराशौ निहत्य
नीलो वशः प्रसभमेव मया प्रदेशः ।
नाय तपसि परिपन्थिवपाकुलो मे,
वृत्तिं प्रयाति नितरा वृषितः कृपाणः ॥१

मन्त्री—देव न खल्वल्पोयमाऽयं परिदुष्यति तेजस्विनः ।

उद्भास्य शलशिखरं च्युतपादपात्र
तेजोनिधिः किमु तो विरमेद्विबस्वान् ?
अप्युद्गतो भग्नमध्यपदः क्रमेण,
घाम्भरं निजेन निखिलं भुवनं चक्रास्ति ॥२

तीसरा अंक

(उसके बाद मन्त्री के साथ राजगडदुर्ग में शिवराज आते हैं)

शिवराजः—मन्त्रिन्, राज्यतत्र भली भाँति व्यवस्थित होने पर भी
मेरा हृदय अगान्त ही क्यों है ?

यद्यपि रातः दिन सँकड़ों सन्तुर्गों का बध करके हमने अपनी शक्ति
स इस प्रदेश को अधिकार में कर लिया, तथापि सन्तुर्गों का बध
करने के लिए उत्सुक मेरी तलवार अभी भी सन्तुष्ट नहीं हुई ।१

मन्त्री—देव, तेजस्वियों की घोड़ी सफलता से सम्तोष नहीं होता—

ज्या सूर्य उदय होकर पर्वत की चोटियों पर उगे (स्थित) हुए
सूत्रों के ऊपरी भाग को प्रकाशित करके ही विश्राम लेता है, नहीं
बढ़ धीरे धीरे गगन के मध्य तक पहुँचकर अपनी शिरणों के प्रकाश से
समस्त जगत को प्रकाशित कर देता है ।२

संप्रति स्वस्वस्मदुपक्रमसंरक्ष्यो बीजापुरेशो महता सेन्येन सहस्राङ्ग-
रमानभियोदयत इत्याशङ्कते मे हृदयम् ।

शिवराज—मयाऽप्येतदेव विनृश्यते ।

(नेपथ्ये)

संतासिकः—विजयतां देवः ।

अनपदहितरक्षो मोतियोगप्रतिष्ठो,
विदस्तिनरिसुसंघः स्वाभिलाषे यितृष्णः ।
दरणमुगतानां दुर्गतानां दरप्य—
स्तपनकुलमणे रथ राजतोऽभोधवीर्यः ॥३

शिवराज—(आकण्ठ्यं) अहो, मयप्रयोगाद्यर्थेन सुखसाध्या
भविष्यन्द्वरातय इति मास्त्यत्रोत्सुष्यकारणम् । तथापि सर्वस्मिन्ना
बस्रोपधय धार्योयतां धन ।

अब हमारे इस प्रयास ने प्रारम्भ हो जाने के कारण बीजापुर
नरेश विनास सेना-महित हमारे ऊपर प्रचानक पीत्रमण करेगा, ऐसी
शंका होती है ।

शिवराज—मृगे भी शका है ।

(नेपथ्य में)

संतासिक—विजय हो, देव ।

हे सूर्यकुल के मणि ! देश द्विज के कायो में रत्न, नोत्रि में निपला धीर
स्विर सन्-समूह का नाश करके, घने स्वार्थ का परिष्कार करने वाले,
धीनदुस्वियों के लिए दरल भूमि, तुम्हारा धननिम बन-वीर्य से पुक्त क्षेत्र
बमक रहा है ॥३

शिवराज—(गुनकर) ओह, भीति-प्रयोग के सहारे, तद्वद ही में
समूहों पर विजय प्राप्त हो जायगी, उजादनी धीर निष्ठा की आवश्यकता
नहीं । तथापि हमें सैन्य संगठन के लिए प्रयास करना चाहिए ।

मन्त्री—पूर्वमेव मयादिष्ट सेनानायक पदातिदलसंग्रहाय ।

द्वारपाल—(प्रविश्य) विजयतां देव । एष कोंकण प्रान्तात्
संप्राप्तो गोवलकरसामन्तो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराज—प्रवेशयेनम् ।

द्वारपाल—तथा । (इति निष्क्रान्त)

सामन्त—(प्रविश्य) विजयतां महाराज । सद्यश्च विजयशालिनो
महाराजस्य प्रणवपुर सरमुपायनीक्रियत एष भवानी लडग ।

देवानां नवविजयध्वजो रणाग्रे

दंश्यानां प्रलयकृदेव धूमकेतु ।

पापानां हृदयधिदग्गणो महोष्

लङ्गोऽयं तव परिकल्पितो भवाग्रा ॥४

तत्स्वीकृत्येनमनुगृहाण तव दासजनम् ।

शिवराज—(सामन्तं स्वीकृत्य निरोक्ष्य च) भगवति परदेयते,

मन्त्री—मैंने सेनापति को पैदल सेना संगठित करने का आदेश
पहले ही दे दिया है ।

द्वारपाल—(प्रवेश कर) विजय हो, देव । कोंकण प्रदेश से आये
गोवलकर सामन्त द्वार पर स्थित हैं ।

शिवराज—उन्हें उपस्थित करो ।

द्वारपाल—जैसी आज्ञा (चला जाता है)

सामन्त—(प्रवेश कर) महाराज की जय हो । सद्यश्च विजय प्राप्त
करने आशा, भवानी नामक यह कृपाण आपकी मैं सादर भेंट करता हूँ—

सुद्ध भूमि में देवों के लिए नवविजयध्वजा की भाँति सहरनेवाली,
दंश्यों के लिए धूमकेतु-सङ्ग विनाशकारिणी बलुव हृदयों को विदीण
करनेवाली यह लसवार भवानी ने सुम्हारे लिए प्रदान की है ।४
अतः इसे स्वीकार कर सेवक को अनुगृहीत करें ।

शिवराज—(सामन्तं स्वीकार कर शीघ्र निरीक्षण करने) भगवति ।

(तत् प्रविशति कल्याण प्रान्ताधिपस्तुषया सहित आवाजी)

आवाजी—वर्धता देव कल्याण विजयेन । देवाघोना सन्ति तत्र
शम्बोकृतस्य तःप्रान्ताधिपस्य प्राणा ।

शिवराज—सद्यस्ते कारागृहाद्विमुच्य यवाहोपचारैश्च सभाष्य
धिसजय ।

आवाजी—यद्देव आज्ञापयति । अपि च महाराजायोपायनी-
कर्तृमानीसमेतदलोकसाधारण स्त्रीरत्नम् । तस्वीकृत्यानुगृह्णात्विम
वासजनम् ।

शिवराज—(सरोपम्) घरे किमिदं त्रय्याऽनार्थमनुष्ठितम् ।

तपन कुलभवस्य घर्मवृत्ते—रवि परदाररतिविभाष्यते किम् ।

विषममुपगतोऽपि राजहस , किम् बकवृत्तिमुपाश्रयेत् वाचिन् ॥६

(उसके पदचान् कल्याण प्रान्त के अधिपति अपनी पुत्रवधु सहित
प्रवेश करते हैं)

आवाजी—कल्याण विजय से आपकी वृद्धि हो । प्रान्ताधिपति
जो बन्दीगृह में हैं, उनके प्राण आपके मधीन हैं ।

शिवराज—तुरन्त कारागार से बाहर कर, यथोचित सम्मान के
साथ छोड़ दो ।

आवाजी—जैसी देव की आज्ञा । मैं महाराज को भेंट करने के
लिए एक भलीविध स्त्रीरत्न लाया हूँ । उसे स्वीकार कर इस दास को
अनुगृहीत करें ।

शिवराज— (क्रोध से) घरे, यह तुमने क्या करवाला ।

क्या सूर्यकुल से उत्पन्न व्यक्ति, जो सदा घर्माचरण में प्रवृत्त रहता
है, कभी परस्त्री में प्रवृत्त होगा ? क्या राजहस विषम परिस्थिति
माने पर भी बगुले की वृत्ति का आश्रम कभी ले सकता है । ६

(मन्त्रिण प्रति) सदुद्बुध्यतां तारस्यैरण्णस्मद्धर्मराज्ये यच्छिव-
राजस्य तद्भूतपार्त्वा च बुहित्निविशैषा परस्त्रिय * ।

मन्त्री—यथाज्ञापयति महाराज । (इति पत्रे निवेदयति)

प्राशात्री—प्रसोशु देव । सम्प्रत राजकुल साधारणोऽयमुपचार
इति हृत्वा मयाऽत्र प्रयुक्तम् । तदनुकम्पनीयोऽय दासजन ।

शिखराज—सव विप्र मेरा परितुष्टोऽहमद्य स्वां कल्पाने प्राग्ताधि-
पत्ये नियुजिम । तन्वायेन प्रजा पालयेस्तत्रमाक धर्मश्च प्रवर्तय ।

प्राशात्री—यथाज्ञापयति देव । (इति प्राग्ताधिपत्युपया सह
निष्वात)

द्वारपाल—(प्रविश्य) विजयतादेव । सप्तशतं साम्भार संनिव ।
महाराजस्य विजयपशोभि समावृष्टा बीजापुरेदामपश्य महाराजाधम-
विष्यन्ति । श्रुत्वा देव प्रमाणम् ।

(मन्त्रा से) लीव ध्वनि में घोषणा करी कि हमारे धर्मराज्य में
शिखराज तथा उसके सेवक दूसरों की स्त्रियों की अपनी बन्धा के समान
समझते हैं ।

मन्त्री—महाराज की जो आज्ञा ।

प्राशात्री—देव, प्रसन्न हों । मैं राजकुलोचित साधारण परम्परा को
पूर्ण ढंगके यही आया हूँ । अतः इस दास पर कृपा करें ।

शिखराज—मुझारे विजय से सम्पुष्ट होकर हम तुमको बन्ध्याए
प्राप्त वा अधिविनि नियुक्त करते हैं । इसलिये म्यापयुक्त प्रजा वा पालन
करते हुए हमारे धर्मराज्य की रक्षा करना ।

प्राशात्री—देव जैसे आज्ञा दे । (प्राग्ताधिपति की बहू के साथ
जाता है ।)

द्वारपाल—(प्रवेश कर) विजय हो, देव । महाराज, धारकी मन्त्री
स्त्रियों से आवृत्त होकर, सात सौ साम्भार संनिवों में बीजापुर श्रेय
को रक्षा दिया है और वे धारका आधम चारने हैं । कृपा निलंब करने ।

शिवराज :—मंत्रिन् कथमेते विश्वसनीया ।

प्रत्ययिनः परिजनेऽतितरा विनीते,
स्त्रं एते मृषोक्ति परमे विषयप्रसक्ते ।
धर्मध्वजे द्विषति हीनकुलोद्भूये च,
विश्वस्य नाशमुपयाति पुरन्दरोऽपि ॥७

मन्त्री—महाराज मन्त्राधिकारनियोगपरोऽयं परामर्श । सैनिकानां तु नास्ति कश्चन स्वतन्त्रोऽधिकारः । तन्नोचितोऽत्र प्रतिषेधः । अयं चंते पर्यामिण इति कृत्याऽपि न युक्तः प्रतिषेधः । यतः

विभिन्नधर्मा नृपतिनिजा प्रजा, समस्तमास्थाप सदैव पालयेत् ।

स्वधर्मं नियन्त्रयपरस्तु हेतया, प्रजाविरोधात् प्रबलोऽपि होयते ॥८

शिवराज—सत्यं समदृष्ट्यधीनं च साक्षाज्यप्रतिष्ठा । (द्वारपालं प्रति) तदुच्यतां मद्बचनारसेनापतिर्यथावदेतेषां नियोगाय ।

शिवराज—मंत्रिन्, इन पर विश्वास कैसे किया जाय ?

राज्य, परिजन, (भूय धर्म) के प्रति भरपूर विनीत, स्त्री, प्रसन्न भाषण, विषयों में घासक, पालण्डी, राजा और निम्नकुलोद्भूत जन में विश्वास करने पर इन्द्र तक सर्वनाश को प्राप्त हो सकता है । ७

मन्त्री—मंत्रियों के साथ बैठकर हम इस पर विचार करेंगे । सैनिकों का तो कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं है । सपति उनकी प्रार्थना अस्वीकार करनी अनुचित है । उन्हें पर धर्मों समझकर भी प्रतिषेध करना ठीक नहीं है । क्योंकि—

राजा को चाहिए कि वह अपनी प्रजा का पालन विभिन्न धर्मों का ध्यान रखते हुए समानभाव से करे । स्वधर्म का तिरस्कार करने वाला प्रबल भी राजा प्रजा के विरोध के कारण नष्ट हो जाता है । ८

शिवराज—सत्य ही है, समानभाव की ही बुद्धि से साम्राज्य की प्रतिष्ठा होती है । (द्वारपाल से) सेनापति को मेरा आदेश सुनाओ कि वहकी गुणानुसार मेरी सेवा में उपस्थित करे ।

द्वारपाल —तथा । (इति निष्क्रान्त)

शिवराज —मन्त्रिन्, नास्ति पर्याप्त बेशल पदातिवल प्रबला-
रातिनिग्रहाय । तदस्माभि शोध सादिवलमप्युपकल्पनीयम् ।

मन्त्री —देव, नेताजीवीराधिष्ठित सादिवलमचिरेण्य भविष्यति
रणावतारक्षमम् । तद्वाजमाचोतो यदाऽसौ प्रत्यागच्छेत्तदाऽस्मिन्नेय
कार्ये नियोजनीय ।

शिवराज —'सर्वथाऽभिनद्यते त्ववाप्यवसाय' ।

द्वारपाल—(प्रविश्य) विजयतां देव । एष राजमाचोत' प्रत्या-
गतो नेताजीवीरो द्वारं तिष्ठति ।

शिवराज —प्रवेश्येनम् ।

द्वारपाल—तथा (इति निष्क्रान्त)

नेताजी —(प्रविश्य) विजयतां देव । कृपयित्वाऽप्युपमान्त' प्रवि-

द्वारपाल—ओ माता । (बला जाता है ।)

शिवराज—मन्त्रिन्, प्रबल शत्रु के दमन के लिए बेशल पंदल सेना
पर्याप्त नहीं है । इसलिए शोध हमें उपसंग्य भी संगठित करना चाहिए ।

मन्त्री—देव, बीरबर नेताजी के नेतृत्व में शोध ही सेना रणभूमि म
उत्तरन के लिए समर्थ होगी । प्रतएव जैसे ही वह राजमाची से वापस
हो उन्हें इसी कार्य के लिए नियुक्त कर दिया जाय ।

शिवराज—तुम्हारे निर्णय से सर्वथा सहमत हूँ ।

द्वारपाल—(प्रवेश कर) विजय हो देव । राजमाची से सीटकर
आये नेताजी द्वार पर स्थित हैं ।

शिवराज—ओ माता उन्हें ।

द्वारपाल—ओ माता । (बला जाता है)

नेताजी—(प्रवेश कर) देव की विजय हो । सर्वथाऽपि मेरे युत-

ष्टेन गूढचरेण निशोचेऽथः प्रसारिता रज्जुमवलम्ब्य प्राकारमधिकं
द्वंरस्मत्सैनिकगणैर्निहता राजमाद्युपरोधकारिणो यवनसैनिकाः ।

शिवराजः—वीर प्रशंसनीयं खलुतवंतस्ताहसविक्रान्तम् । अग्निं
परितोष्यते ययाहोपचारेण स्वया बन्दीकृतो यवनेशःपालः ।

नेताजीः—अथ किम् । की भु खलु महाराज शासनमतिक्रमिषुं
प्रभवति । देव तत्र निदग्धाः सन्त्यग्येऽप्येतद्युद्धगृहे ता यवन सैनिकाः ।

शिवराजः—भञ्जिनू आदिश राजमाद्यधिकृतं तान् विसर्जयितुम् ।
मन्थोः—यदाज्ञापयति देवः । (इति पत्रो निवेशयति)

शिवराजः—वीर प्रत्यासन्न एवापरः सप्रामः । तत्संनाट्य साधि-
निवहान् ।

नेताजीः—यद्देव आज्ञापयति । (इति निष्कासं)

शर ने किसान के बेश में पहुँचकर रस्सी लटका दिया जिसके सहारे
हमारे सैनिकों ने राजमाची में प्रवेश कर दुर्ग के अंदरोंपक यवन सैनिकों
को मार डाला ।

शिवराज—वीर तुम्हारा यह साहस वीर वीर्य प्रशंसनीय है ।
क्या बीजापुर नरेश का स्थान, जो तुम्हारा बन्दी है व्यवहार से
सन्तुष्ट है ।

नेताजी—जी हाँ । जिसमें साहस है, जो महाराज के शासन
की अवहेलना करें । देव अथ्य भी तो युद्ध में बन्दी यवन सैनिक हैं ।

शिवराज—मन्थिन, राजमाची के रक्षक को उन्हें मुक्त करने का
आदेश करो ।

मन्थो—जैसी देव की आज्ञा । (बागज पर लिसगा है ।)

शिवराज—वीर दूसरा सप्राम भी धम्निकट है । इसलिये रथ सैग्य
संवार कर लो ।

नेताजी—जैसी देव की आज्ञा । (जसा आज्ञा है)

घरः—(प्रविश्य) देवस्य स्वातंत्र्यनिष्ठया संरम्भेन दुरात्मना
बीजापुराधांशेन कारागारे निरुद्धास्तासपादाः । (इति निष्कात)

शिवराजः—(सरोपम्) अरे दुर्मदान्ध, अपि तन्निष्ठया विहिता-
यास्ते सपर्याया ईदृशः परिणामः । अथवा कृतोपकारेभ्य एव द्रुह्यन्ति
दुरात्मनः ।

विहाय कान्ता सुतस्यभ्युदगनि, कुलप्रतिष्ठामप्य जीवितस्पृहाम् ।

हृत्प्रेकभक्त्याऽपि निषेवितोऽधमः, पर्याप्तकामः स्वयमेव सेवकम् ॥६

मंत्रीः—सर्वशास्त्रमनाश्च एवाधम इच्छ्यायाः पारितोदिकम् ।

शिवराजः—मंत्रिन्, कथमपि रक्षणोपाय पितृवरणाः । यतः

राजः प्रजायाः परिपालनं यथा, भृत्यस्य भर्तुर्हित साधनम् च ।

कुलद्विषः पत्युरघानुवर्तनं, तथा सुतस्यारहितं गुरोःप्राप्तनम् ॥१०

घर—(प्रवेग कर) देव के हृदय में स्वातंत्र्य निष्ठा हो जाने के
कारण दुरात्मा बीजापुर नरेश ने आपके पिताजी को कारागार में
छोड़ दिया है । (बसा जाता है)

शिवराज—(क्रोध से) अरे दुर्मदान्ध, क्या तुम सबही निष्ठा का
यही परिणाम है ? अथवा उपकार करने वाले से ही दुरात्मा पुरुष द्रोह
करते हैं ।

स्त्री, पुत्र, बन्धु—बान्धवों, कुल—पर्यादा और प्राणों तक का मोह
त्याग कर सेवा करने वाले सेवक को भी (अधम व्यक्ति) अपना कार्य
पूर्ण हो जाने पर मार डालते हैं ॥६

मंत्री—अधम व्यक्ति की सेवा का पुरस्कार सर्वशास्त्रमनाश्च है ।

शिवराज—मंत्रिन्, पितृवरण को किसी भी प्रकार रक्षा होनी
चाहिए । बयोदि—

जैसे राजा द्वारा प्रजा का पालन करना परम कर्तव्य है, सेवक का
कर्तव्य स्वामी का दृढ़ साधन करना, कुलीन स्त्री का कर्तव्य पति की
प्राप्ता भानना है तर्षब पुत्र का कर्तव्य है गुरु (पिता) की उपासना
करना ॥१०

मंशी—देव अत्र सेशामनन्ति नयशाब्दकोविदो यत्

सन्धानं सत्यसन्धे नयगुणविहित विग्रहो हीन सत्त्वे,
मान चान्तविषये गिरिगहनगते चासने वृगसंस्थे ।
द्वेष व्यूहाप्रघर्षे कुटिसनपरते क्षत्तियोगावलिप्ते,
प्रत्याभिन्नाशु कार्यः प्रबलनरपते संशयः श्रेयसे न ॥११

सदेतद्विपरसतरण्यं दिल्लीपतिरेव समाश्रयणीयः । यतः

सदाश्रयोऽयं विदुषां कलाव्रतो निजे परे चापि समानभावः ।

निरस्तपाव. स्वयमप्रमत्त, प्रजा प्रजा स्वा इव शास्त्र्ययीश ॥१२

शिवराज —ममाप्येतदेवाभिप्रेतम् । यतः

मन्त्री—इस विषय में नीतिज्ञों का मत है कि—स्वहित को दृष्टि से सत्य—पयगाभी नीतिवान् शत्रु से सन्धि, शक्तिहीन से युद्ध—धोपणा, जिसकी शक्ति अन्दर ही अन्दर क्षीण हो उस पर आश्रय, पर्वत, जङ्गल पथवा दुर्ग में स्थित शत्रु से युद्ध—विराम, और उस शत्रु के साथ दुहरी खास बातचीत चाहिए, जो सैन्य—व्यूह के कारण अज्ञेय हो रहा हो एक कुटिल नीति और तीनों शक्तियों से युक्त अभिमानी, तथा अज्ञेय शत्रु के लिये प्रबल राजा का आश्रय ग्रहण करना चाहिए ॥११

अतः इस विपत्ति से मुक्ति पाने के लिए हमें दिल्ली सम्राट् का आश्रय लेना चाहिए । क्योंकि—

बहु विद्वानों, कलाकारों का आश्रयदाता अपने मित्र और शत्रु दोनों के प्रति समानभाव रखने वाला, पाप बर्ष से रहित अपने कर्तव्य में रत और प्रजा का औरत अन्तान की भाँति पालन करनेवाला है ॥१२

शिवराज—मेरा भी यही विचार है । क्योंकि—

दिल्लीशोपाधयेणैव वशं नेयोऽयमुद्धतः ।

दुर्दान्तस्यायमस्यास्य नास्त्यन्या दमनक्रिया ॥१३

तत्प्रयुज्यतां कोऽपि कार्यक्षमो निसृष्टार्थो दूतोऽस्मदभीष्टं
संपादयितुम् ।

मंत्री :— गच्छतु रघुनाथपन्त एतत्कार्यं सतिद्वये ।

शिवराज :—स्थान एवास्म नयविच्छक्षणस्य पण्डितवरस्य नियोगः ।

कः को ऽयं भोः ।

द्वारपाल :—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

शिवराज :—पण्डितवरं ब्रूष्टुमिच्छामि ।

द्वारपाल :—यदाज्ञापयति देव । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराज :—यिलिरयतां तावद्विज्ञापनपत्रम् ।

मंत्री :—तथा । (इति पत्रं लिखति)

इस उद्धत राजू की दिल्लीश्वर की सहायता से ही वश में करना चाहिए, दुर्दान्त और धधम के लिए अन्य कोई उपाय नहीं है ॥१३॥
मत. हमारे अभीष्ट के संपादनार्थ किसी कुशल दूत को नियुक्त करो ।

मंत्री—इस कार्य की सिद्धि के लिए रघुनाथपन्त जाये ।

शिवराज—नीतिनिपुण पण्डितवर ही इसके लिए उपयुक्त है । यो ?
कौन है ?

द्वारपाल—(प्रवेशकर) आज्ञा देव ।

शिवराज—पण्डितवर के दर्शन की इच्छा है ।

द्वारपाल—ओ आज्ञा । (यत्न जाता है)

शिवराज—तब तक विज्ञापनपत्र लिखें ।

मंत्री—(पत्र लिखता है)

शिवराज :—(सेस्यमाविशति) पत्रं देवाय - ।

श्रीमद्भारतराजकुलाधीश्वर - साम्राज्यय निवेदन सार्वभौम-
मोगलेशचरण रचितसञ्जलि शिवराज सप्रश्रय प्राययते यत्सार्वभौमस्य
भृत्यवर्गं प्रविधिक्षुरव ज्ञानो यथा निघोणेनानुग्रह इति । अपिच कृतघ्नेन
बीजापुरेशेन विमास्परायं कारागृहे निवृत्तान् निवृत्तातपादानां मुक्तिसंवा-
देनानुग्रहान्तरमभिसंयत्यय सार्वभौमभूयः । वितरतु कृपापारावारे
श्री सार्वभौमेऽनन्तयश सभृद्विर्भव विश्वनियन्तेत्याशास्ते च इति ।

संत्रो—देव लिखितं रुपा यथादिष्टम् ।

पण्डितवर :—(प्रविश्य) विज्यतां देवः ।

शिवराजः—आदायैतद्विज्ञापनपत्र प्रतिष्ठस्य तावद्दिल्ली नगरम् ।
तत्र च सार्वभौममनुकूल विधाय रुक्मिणा सपादयात्सत्तातपावानां
विमुक्तिम् । (इति स्वनाममुद्राङ्कित विधाय पत्रमसंपति)

शिवराज—(पत्र लिखाते है) श्रीमद्भारतराज-कुलाधीश्वर
साम्राज्य श्रीनिकेतन सार्वभौम मुगल-सम्राट् के चरणों में सजलिवद्ध
यह शिवराज सादर निवेदन करता है कि सार्वभौम सम्राट् के यहाँ
अपनी योग्यतानुसार सेवक के रूप में प्रवेश चाहता है । और कृतघ्न
बीजापुराधीश द्वारा निरपराध कारागार में बन्द अपने तातचरण के
मुक्ति-सपादन-कार्य के लिए भी अनुग्रह की यह सार्वभौमभूय इच्छा
करता है । अनन्तपशवाले सार्वभौम सम्राट्, जो विश्व के नियन्ता हैं,
हमारे ऊपर कृपासागर के कुछ कण विखेर दें ।

संत्रो—देव, आपके आदेशानुसार मैंने लिख दिया ।

पण्डितवर—(प्रवेशकर) विजय हो देव ।

शिवराज—यह विज्ञापनपत्र लेकर दिल्ली नगर जायें । और वहाँ
सबतौभावेन अपने प्रयास से सार्वभौम सम्राट् को अपने अनुकूल करके
तातचरण की मुक्त कराने का कार्य सम्पन्न करो । (अपने नाम की
मुद्रा से अङ्कित पत्र देता है)

पण्डितवर :—(पत्रमादाय) यहैव आजापयति । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराज :—क कोऽग्र भोः ।

द्वारपाल :—(प्रविश्य) आजापयतु देवः ।

शिवराज :—घ्नन्तुं हमार्यमादेशय ।

द्वारपाल :—इत इतो देवः । (उभौ परिक्रमन्तः) एतदन्तर्गृहद्वारं
प्रविशतु देव । (इति निष्क्रान्तः)

(सतः प्रविशति घ्नन्तुं हावस्थिता राजमाता राज्ञो च)

शिवराज :—(प्रविश्य) अग्न्यग्निवादेये ।

राजमाता—अतश्चिर जीव । अग्न्यस्ति कश्चिद्बिधेयः ।

शिवराज :—कृतघ्नेन बीजापुरेशेन यद्योऽहतात्ता तातपादानां
विमुक्तये कतं व्यतपापतितो मोगलेशसश्रय ।

राजामाता—मुतन्त्रितोऽपं मत्रनिर्णय । भविष्यत्यनेन तवा-
भीष्टसिद्धिः । यतः

पण्डितवर—(पत्र लेकर) जैसा देव आदेश करें । (चला जाता है)

शिवराज—घो ! कौन है ?

द्वारपाल—(प्रवेशकर) आजा देव ।

शिवराज—घ्नन्तुं ह का मार्गं दिक्षाघो ।

द्वारपाल—इधर, देव इधर से । (दोनों चलने का नाट्य करते हैं)

यह घ्नन्तुं ह का द्वार है, प्रवेश करें देव । (चला जाता है)

(उत्तके बाद घ्नन्तुं ह में स्थित राजमाता और राजी का प्रवेश)

शिवराज—(प्रवेशकर) माता-अभिवादन करता हूँ ।

राजमाता—चिरजीव पुत्र । कोई खेरोय समाचार ?

शिवराज—कृतघ्न बीजापुरनरेश द्वारा बन्दी किये गये तातचरण
की मुक्ति के लिए मुगत ताम्राट् का सहारा ले रहा हूँ ।

राजमाता—यह उचित निर्णय हुआ । इस प्रकार तुम्हारा
अभीष्ट सिद्ध होगा । बर्षोक्ति—

न तस्यैवा विक्रमशालिनोऽप्यलं, भवन्त्यरातोन् सहसा प्रर्षाषितुम् ।
उर्ध्वस्विनां साहसमस्ति विप्लुते, नमप्रयोमेऽगतिका गतिष्णुं वम् ॥१४

तत्प्रेषय पण्डितवरमेनमर्थं संपादयितुम् ।

शिवराज :—धम्ब, तपैव मया प्रकल्पितम् । एवं स्वपाञ्चुमो-
दितस्य नितरां मोदते मेऽन्तरात्मा ।

राजमाता—वत्स, धृतं मया चरिभ्यो पत्त्राणान्तविपद आत्मानं
रक्षितुं धमन्तरमाधितो बजाजीवीर पुनः स्वधर्मं प्रवेष्टुमिच्छति ।
आत्यत्र प्रतिकूलोऽस्मद्बन्धुवर्गं । परन्तु साम्राज्य संस्थापन प्रवृत्तेन
स्वया कर्तव्यो धीर संप्रहः । अतो यथाविधि परिशोधितस्यास्पात्मजाय
स्वकन्यां प्रदाय संपादयाम्य चिरसौहृदम् ।

शिवराज :—शिरसि श्रियते तवादेशः ।

विक्रमशीलता ही सदा शत्रुर्भों को घातान्त करने के लिए पर्याप्त
नहीं है, शक्तिशाली शत्रु पर विजय पाने में जब नीति प्रयोग भी
धसफल हो जाय तो साहस ही अन्तिम साधन होता है । १४

तो पण्डितवर को यह संपादित करने के लिए भेजो ।

शिवराज—धम्ब, यही व्यवस्था मैंने की है । इस प्रकार तुम्हारे
अनुमोदन से मेरी अन्तरात्मा बहुत प्रसन्न है ।

राजमाता—वत्स, सुना है कि प्राणान्तक विपत्ति से रक्षार्थ धर्म-
परिवर्तन करने वाला बजाजीराव पुनः स्वधर्म में प्रवेश करना चाहता
है । हमारे बन्धुवर्ग इसके प्रतिकूल हैं । किन्तु साम्राज्य संस्थापन में
प्रयत्नशील तुमको वीरो को अपने पक्ष में लाना चाहिए, इसलिए
शुद्धि-क्रिया के पश्चात् तुम उसके पुत्र को अपनी कन्या प्रदान करके
अनिष्टता प्राप्त करो ।

शिवराज—आपका आदेश स्वीकार है ।

राजमाता—वत्स युज्यस्व भूपोभूयोभङ्गसेन । ध्रम महेश्वरा-
राधनाय साधयामि देवगृहम् । (इति निष्क्रान्ता)

राज्ञी—आयपुत्र, धम खलु ।

लोक प्रकाशनपरातितमोऽपहारि, सतर्पण नयनमानसयोबंपुस्ते ।
एतन्नवोपचितयौवनराज्यलक्ष्या, तेजोद्वयस्य युगपत्सुयमा दधाति ॥१५

शिवराज —देवि त्वमेवास्ति मम सकलमङ्गलानामेकधनम् ।
यत्न

प्रोत्साहनेन समराङ्गण तारपरस्य, प्रत्यागतस्य च पराक्रमणानुयोगे ।
उद्वेजितस्य नयनायदिकल्पनैश्च, श्रान्तस्य नमंबचसा तनुये सुख मे ॥१६

राज्ञी —आयंपुत्र, धम एवंय सहधर्मचारिणीना क्षत्राङ्गनानाम् ।
निसर्पत एव

राजमाता—वत्स, साफल्य और मंगल के पात्र बनो । ध्रम महेश्वर
की प्रार्थना के लिए देवमन्दिर में जा रही हूँ । (चली जाती है)

राज्ञी—आयंपुत्र, आज—आपका यह शरीर जो ससार की प्रका-
शित करनेवाला, शत्रु रूपी अधकार को दूर करने वाला नवयोवन तथा
राज्यलक्ष्मी से युक्त यह शरीर दोनों तेजो—सूर्य और चन्द्रमा की
शोभा एक साथ धारण कर रहा है ।१५

शिवराज—देवि, तुम्हीं हमारे समस्त मंगल के लिए केन्द्र स्थान
हो । क्योंकि—तुम मुझे सदा सुख प्रदान करती रहती हो—समर के
लिए प्रस्थानकाल में प्रोत्साहित करके, वापस आने पर पराक्रम सबधी
विविध प्रश्न पूछकर, उद्विग्न रहने पर विभिन्न नीति विषयक वार्ता
द्वारा एव जब श्रान्त रहता हूँ तो मधुर बचन बोलकर सुख पहुँचाती
हो ।१६

राज्ञी—आयंपुत्र, सहधर्मिणी क्षत्रिय ललना का धम ही यही है ।
स्वभावतः

तव चरते मे हृदयं प्रतिष्ठितं, मनश्च मे स्वप्नसंकरता गतम् ।
स्वयि प्रसन्ने भवति प्रसन्नं; समाकुलं, चाकुलिते स्वयि प्रिय ॥१७

शिवराज :—(स्वगतम्) अहो नु ललु घन्योऽस्मि । (प्रकाशम्)
तव सुवास्यन्दिबसोभिराप्यापितोऽहं पुनः पुनर्नैवतामुपेक्षारतीनभि-
भविजुमरसहे ।

राज्ञी—संप्रत्यथमंप्रापेपुराजकुलेषु धर्मवृत्तेरतवतुल्योपगमैव
विजयधोः ।

शिवराज :—(शतघ्नीस्यनमाकर्ण्यं) अहो जातः ललु सेनानिरी-
क्षण समय । यावत्साधयामि ।

राज्ञी—अहमपि तावच्छिवाराधनाय देवगृहमुपैमि ।

(पटोक्षेपः)

(इति निष्क्रान्ती)

समाप्तोऽयं रस्यव्यवस्थितनामा

तृतीयोऽङ्कः

मेरा हृदय तुम्हारे सकल्प, मस्तिष्क तुम्हारे मन के साथ एकाकार
रहता है । हे प्रिय, तुम्हारे प्रसन्न रहने पर प्रसन्नता तथा व्याकुल
रहने पर मुझे आकुलता होती है ॥१७

शिवराज—(स्वगत) वस्तुतः माध्यशाली हूँ मैं । (प्रकट) तुम्हारे
सुधा के समान मधुर बचनों से भ्रान्तित मैं शत्रुओं को आश्रय करने
की नवस्फूर्ति प्राप्त कर उन्साहित होता हूँ ।

राज्ञी—राजकुलो के प्रायः अधर्मरत होते हुए धर्मवृत्ति वाले तुम्हारे
लिए विजयधी सहज प्राप्य होगी ।

शिवराज—(शतघ्नी की ध्वनि सुनकर) सेना-निरीक्षण का समय
हो गया । अब मैं चलूँ ।

राज्ञी—मैं भी शिवाराधन के लिए देवमन्दिर में जा रही हूँ ।

(परदा गिरता है)

(दोनों चले जाते हैं)

राज्यव्यवस्थिति नामक

तृतीय अंक समाप्त

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रदिशतो राजपुरुषो)

प्रथम—भद्र किमेव प्रकाशेऽपि महोत्सवे नियोगभूय इवात्र परिभ्रमसि ।

द्वितीय—अथे किं निमित्तोऽयं महोत्सवः ।

प्रथम—अहो किं न जानास्यस्य खलु भवानो प्रतिष्ठाया परि-
रुमाप्तिदिनमिति ।

द्वितीय—भद्र राजकार्यार्थं देशान्तरं प्रस्थितोऽहमद्यत्र सप्राप्तः ।

प्रथम—दिष्टयंततप्रतिष्ठामहोत्सवार्थं समुपस्थितस्य श्रीराम-
दासस्वामिनः सान्निध्येन पवित्रीकृत एष प्रतापगडदुर्गं । भविताऽपि
देवस्थानेन महात्मना समागतः । अयि नामार्हमस्तपोनिधी भक्तिप्रवणो

चौथा अंक

(दो राजपुरुषों का प्रवेश)

प्रथम—भद्र, महोत्सव के प्रारम्भ हो जाने पर भी यह तुम घूम
वर्षों रहे हो, जैसे कोई काम न हो ।

द्वितीय—अहो, यह महोत्सव कैसा ?

प्रथम—अहो, क्या नहीं जानते कि भवानी की प्रतिष्ठा का आज
समाप्ति दिन है ।

द्वितीय—भद्र, राज्यकार्य से देशान्तर गया था, आज ही यहाँ
आया ।

प्रथम—भाग्यवशात् प्रतिष्ठा—महोत्सव के निमित्त आये हुए
स्वामी रामदास के सान्निध्य से यह दुर्ग प्रतापगड पवित्र हुआ । आज
महाराज से इनकी भेंट होगी । मेरी इच्छा है कि देव के हृदय में इनके

भवेदस्मद्देवः । यतः स एवास्ति समर्थो देवस्य विघ्नशताम्यधि
विचारयितुम् ।

द्वितीय — भ्रम्यस्ति कश्चित्प्रसिक्तूल प्रसङ्गायकाशो घेनेव द्रवीषि ।

प्रथम — अथ किम् । कारागृहाद्विनिर्मुक्तस्य शाहजीमहाराजस्य
पुनः कर्नाटकाधिकारपदावाप्त्यनन्तरं बीजापुरेशस्य पुरतो देव बन्दीबधुं
प्रतिजनेऽस्यमाधिष्ठो धूतः शामराज । एताप्रतिज्ञा सिद्धये च जावली
प्रान्ताधिपसाहाय्यमपेक्षमाण स तमेवाधित्यावर्तत । अत्र च निवसता
शामराजहतकेन सह्याद्रिवन पर्यटसो देवस्य वधार्थं नियुक्तान् मारात्म-
कान् किरातान्निहत्य रक्षितो देवस्तत्रा । स्माद्रुपस्थितेन नेताजीवीरेण ।

। द्वितीय — एव मिथो विद्वेष क्लुपितेष्वस्मत्क्षत्रवीरेषु कुतः स्वा-
संभ्याधिगमो भारतीयानाम् ।

प्रति भक्ति भावना प्रगाढ हो । क्योंकि वही देव के सैकड़ों विघ्नों को दूर
करने में समर्थ है ।

द्वितीय—बया कोई प्रतिकूल घटना सम्भावित है जो ऐसा कहते
हो ।

प्रथम—हाँ । शाहजी महाराज के कारागार से मुक्त होकर पुनः
कर्नाटक के अधिकार पद पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात् ईर्ष्यावश धूतं
शामराज ने बीजापुरापीश के समक्ष देव को बन्दी बनाने की प्रतिज्ञा
की । इस प्रतिज्ञा की सिद्धि के लिए साहाय्य की अपेक्षा रखकर उसने
जावली के शासक का आश्रय ग्रहण किया । उसके वहाँ निवास करते
हुए शामराज द्वारा, देव के वध हेतु प्रेषित जगत मे घुमते हुए उन
वधिक किरातों के भ्रमणक उपस्थित होकर नेताजी द्वारा मारे जाने, पर
देव की रक्षा हुई ।

द्वितीय—इस प्रकार हम, शत्रियों के परस्पर की विद्वेष भावना
से क्लुपित हृदय भारतीयों के लिए स्वतन्त्रता की प्राप्ति वहाँ ।

। प्रथमः—ततश्च सुखं प्रत्यागतेन देवेन संदिष्टं तस्य क्षत्रधर्मस्यः
जावलीप्रान्ताधिपस्य यद्

द्विक्रीय देशकुल धर्मयशो अभिमाने,
स्लेच्छाधिपाय न मनागपि सज्जते त्यम् ।
प्राक्रम्य सुख्यकण्ठैरपि पाशबद्धः,
किंवा इववृत्तिमभिनन्दति सिंहशाधः ॥१

इति । परन्तु प्रत्यासन्नमरणेन तेन सर्वथा प्रत्याक्षिप्तं देवस्य
मन्त्रितम् । ततश्च समिद्धमग्न्या देवेनासौ क्षत्रकुलापसदः क्षिप्रमेव
यमालयं प्रेषितः ।

द्वितीय—धर्म्यं हि नटपाटय देवस्य । सद्य एव धर्मो विपोत्वणः
कृष्णसर्पः ।

प्रथम—अयं रोगान्तरं मोगलसाम्राज्यमपधुत्स्य दिस्ली नगरं
प्रयाते तद्युवराजे जावली प्रान्ताधिपवध संजात्मणैण बीजापुरेशेन देवं

प्रथम—उसके परवात् सानन्द वापस आकर देव ने क्षत्रिय धर्म
जावली प्रान्ताधिप को भादेश दिया ।

यवनराज के हाथों अपना अभिमान, धर्म, यश और कुल-मर्वादा
को बेचकर क्या सुम्हें तनिक भी सज्जा नहीं पाती, यधिको द्वारा
पाशबद्ध होने पर भी क्या सिंह-शावक कभी कुत्ते की वृत्ति स्वीकार
करता है ॥१

गृह्यु के निकट जानकर भी देव की मन्त्रणा को नहीं माना और
उसके परवात् उससे क्रुद्ध होकर देव ने उस क्षत्रियद्वोही दुष्ट को तुरन्त
यमपुर को भेज दिया ।

द्वितीय—देव की यह राजनीतिक कुशलता प्रशस्तनीय है । शीघ्र
ही यह विपत्ता कृष्णसर्प भी मारा जाना चाहिये ।

प्रथम—मुगल सम्राट को रोगग्रस्त जानकर उसके युवराज के
दिस्ली नगर प्रतिपत्त होने के बाद, जावली प्रान्त के अधिकाारी के वध

निंप्रहीतुमाज्ञतः स्वसेनानायकः । तद्विचारेण भविष्यति पुनरपि
युद्धारम्भः ।

द्वितीय—अप्यस्ति गिदितमेतद्देवस्य ।

प्रथमः—चारुक्षुवो देवस्य नास्ति रिमप्यगोचरम् । (पुरतो
विलोषय) एष परिसमाप्य प्रतिष्ठाकार्यं प्रस्थितो देवो राजमन्दिरम् ।

द्वितीय—भद्र, अहं सावदेशान्तरोदन्तमावेवयितुमुपैमि
मन्त्रिसदनम् ।

प्रथम—ग्रहभयि स्वनियोगपरिपालनाय प्राप्नोमि राजमन्दिरम् ।
(इति निष्क्रान्तौ)

(पटोक्षेपः)

इति विश्वकम्भकः

से क्रुध बीजापुराधीश ने अपने सेनापति को देव को बन्दी बनाने का
आदेश दिया है । इससे सीधे ही युद्ध प्रारम्भ हो जायगा ।

द्वितीय—यदा यह देव को मालूम है ।

प्रथम—गुप्तचरो द्वारा समस्त सूचनाएँ प्राप्त करनेवाले देव के लिये
कुछ भी अज्ञात नहीं है । (सामने देखकर) प्रतिष्ठा कार्य की समाप्त
करके यह देव राजमहल को जा रहे हैं ।

द्वितीय—भद्र, मैं देशान्तर के समाचार निवेदन करने के लिये मंत्री
के पास जा रहा हूँ ।

प्रथम—मैं भी अपना कार्यभार निर्वाहने राजमहल को चल
रहा हूँ । (चले जाते हैं)

(परदा गिरता है)

विश्वकम्भक समाप्त

। (सत प्रविशति रामदासेन सह शिवराज)

शिवराज — (सप्रथयम्) दिष्ट्यात् कृतार्थतां गमितोऽस्मि चिर-
प्रायितेन भगवत्प्रसादाधिगमेन ।

(इति पुष्पध्वज कण्ठे समर्प्य पादयोः पतति)

श्रीरामदास — भारतकबीर उच्यते । धर्मराज्यसंस्थापनार्थं
यादुःशोनायतीत्यस्य तव भवतु सर्वत्राप्रतिहृतो विजयः ।

शिवराज — (उत्थय) प्रतिगृहीताशो । (सनिर्वेद) भगवन्, भय
मया यावज्जीवं किमेवमेव हिंसाप्रधानो धर्मोऽनुष्ठेयः ।

श्रीरामदास — उपव्यथितवर्णाश्रमेऽस्मिन् भारतेवर्षे दुष्कृतां हिंसन
साधूनां च परित्राणमेव क्षत्रियस्य परा धर्मः । तत्रय-मार्गमयत्सम्यो-
त्पयगामिनो नृपाधर्माश्चोन्मूल्य प्रवर्तय तव धर्मशासनम् । न चैव
प्रवर्तमानस्य तव ध्येय प्रतिबन्धः । यतः

(उसके बाद रामदास के साथ शिवराज का प्रवेश)

शिवराज — (विनम्रता से) चिरकाल से भगवन् के दर्शन के लिए
उत्सुक मैं आज भाग्यवशात् कृतार्थ हुआ । (पुष्पमाल कण्ठ में समर्पित
कर पैरो पर गिरता है) ।

श्रीरामदास — भारत के प्रद्वितीयकबीर उठो । धर्मराज्य की
स्थापना-हेतु धर्म के ग्रंथ-सहित प्रवर्तित तुम्हारी सर्वत्र विजय हो ।

शिवराज — (उठकर) अनुग्रहीत हुआ । (सखेद) भगवन्, क्या
जीवन पर्यन्त मैं इसी प्रकार हिंसात्मक कार्य करता रहूँगा ।

श्रीरामदास — वर्णाश्रम की व्यवस्थित परम्परा वाले इस भारतवर्ष
में क्षत्रियों का परम धर्म है कि दुष्टों का बध और साधुओं की रक्षा
करें । इसलिए नीतिमार्ग का आश्रय ग्रहण करके पद्मभ्रष्ट अधम राजाओं
का नाश करके धर्मशासन स्थापित करो । इस आचरण में तुम्हें
कोई धार्मिक बाधा नहीं है । क्योंकि—

लोकसग्रहपरिजिताऽभिः ; कर्मयोगनिरतं नृपोत्तमः ।
पाप्मनां प्रमथने प्रकल्पितो, धर्मतत्रमपि बाधते नय ॥२

परन्तु

धर्मप्रवृत्ता परिपन्थिनस्त्वया, सामन्थं राजान् स्वयंश विधेया ।
न धर्मं नुप्ते हि नयप्रयोगा , कदाचिदप्यर्षपरा भवन्ति ॥३

एव धर्मनयप्रतिष्ठितेन च स्वया नानाधर्मा प्रजा समबुद्धयं च
पालनीया । यत

श्रुत यथा धर्मं भयेन रक्षणे, नृभिस्तथा नैव नरेन्द्रशासनात् ।
धर्मान् सवाचारपरानतो नृप , प्रजाहिततो नियमेन पालयेत् ॥४

एव प्रवर्तमानस्य तव सर्वधाऽनुकूला भविष्यति जगन्निगमत्री
परवेवता ।

उत्तम राजा जो अपनी प्रजा के कल्याणार्थं यत्नशील रहते हैं,
जितेन्द्रिय और कर्मनिष्ठ हैं, दुष्कर्मों का विनाश करने लिए नीति का
प्रयोग करते हैं, ऐसे राजा धर्मतत्र को भी धामान्त कर दासते हैं । २

परन्तु हे राजान्, तुम्हें अपने शत्रुओं पर विजय करनी चाहिए, वे
शत्रु जो धर्मनीति तथा साम्य शक्ति से युक्त हैं, क्योंकि कभी धर्मगुण के
समक्ष राजनीति का प्रयोग व्यर्थ हो जाता है । ३

इस प्रकार धर्मनीति की प्रतिष्ठा द्वारा माना धर्मों का अनुसरण
करते हुए समान बुद्धि से तुम्हें प्रजा का पालन करना चाहिए ।

धर्म के भय से जैसे धापरण की रक्षा होनी है उस प्रकार दासत
त मनुष्यों को भय नहीं होगा, मनुष्य धर्म और ईश्वर को डरता है धर्म
राजा को चाहिए कि वह धर्म एव उदाचार का ध्यान रखते हुए, प्रजा
का हित हृदय में सोचकर नियमन शासन करे । ४

इस प्रकार धापरण करने पर जगन्निगमत्री पराजति आपने अनुभूत
रहेगी ।

शिवराजः—भगवन् त्वानुग्रहेणाद्य निवृत्तं मे मोहावरणम् ।
नवीकृतश्च साम्राज्यसत्थापनोत्साहः ।

श्रीरामदासः—वत्स, तव साहाय्यार्थं प्रतिमठं मया विनीयन्ते
राष्ट्रभावेभावित्ताः शतशो युवगणाः तस्मिन्

व्यायामयोगोपचिताङ्ग सत्त्वा विद्याकलादण्डनयप्रतिष्ठिताः ।

राष्ट्रकर्मत्ता उपधाविशोधिता भवन्तु ते भाविरणो सहायाः ॥५

शिवराज —ग्रहो परमार्थतो भगवत्तंवारद्वये राष्ट्रोद्धरणोद्यमेऽहं
तु निमित्तमात्रमेव । यत्सत्त्वं ब्रह्मसनेधितमेव क्षत्रमृणोति ।

श्रीरामदास —वत्स, यत्र ब्रह्म एव क्षत्रं तत्र समोची धरतस्तत्रैव
साम्राज्यधीविलसति । अतः

ये क्षमा स्वतपसा दुरात्मना निग्रहेऽपि च सतात्मनुग्रहे ।

ब्रह्मवर्चंति प्रात्सर्वाजिनस्तान्तभाजय सदा स्वगुण्ये ॥६

शिवराज—भगवन्, आपके अनुग्रह से आज मेरा मोहान्धकार
समाप्त हुआ और साम्राज्य स्थापना का उत्साह तथा हो गया ।

श्रीरामदास—वत्स, तुम्हारी सहायता से लिए मैं प्रत्येक मठ में
राष्ट्रीयभावना का समावेश कर रहा हूँ । अतः ये—

व्यायाम द्वारा अपने शरीर में शक्ति एकत्र कर, विद्या कला,
दण्डनीति आदि में दक्ष हो, राष्ट्रभक्ति से युक्त, धर्म, धर्म में श्लीभाति
परीक्षित होकर, भावी समर में सहायक होंगे । ५

शिवराज—ग्रहो, परमार्थ की भवना से वस्तुतः राष्ट्रोद्धार का
कार्य आपने ही प्रारम्भ किया, मैं इसमें निमित्त मात्र हूँ । यह सत्य ही है
कि ब्राह्मणों की शक्ति से युक्त होकर क्षत्रियों की शक्ति बढ़ती है ।

श्रीरामदास—वत्स, जहाँ ब्राह्मण और क्षत्रियों की बुद्धि एवं शक्ति
का सहयोग होता है, वहीं साम्राज्य-लक्ष्मी विलसती है । इसलिए वही
समादरणीय है जो क्षमाशीलता और सपरया के बल दुरात्मा मनुष्यों
का निग्रह और सज्जनों पर अनुग्रह करते हैं तथा जो ब्रह्मतेज से प्रकाश-
मान्, सभी को अपनी रक्षा हेतु, अपने ही समान मानते हैं । ६

अपि च साम्राज्यसमृद्धये स्वया प्रपन्नेनानुरञ्जनीया निपाद-
पञ्चमाक्षरवारो वर्या । यत

यथाऽत्र लोकव्यवहारसिद्धये, भवेत्समर्थोऽविषलेर्द्रिय पुमान् ।

तथा नृप. पञ्चजनोपसग्रहात्, साम्राज्यसौभाग्यफलाय कल्पते ॥७

शिवराज — भगवतो महिम्ना वशीकृतोऽय जनोऽत प्रभृति शिष्य
दृष्ट्याऽनुकम्पनीय ।

श्रीरामदासः—वत्स, न केवलं शिष्य इति स्वमसि मम प्रेमा-
स्पदम् । अपितु स्वमसि मे द्वितीय हृदयम् । त्वदधीनेष्वस्ति मे
साध्यसिद्धि । तन्मया सतत सावधानेनोदीक्ष्यते त्वद्विषयव्यजप्रसार ।
सप्रत्यपि त्वां निर्विषणमपधृत्यसंप्राप्तोऽस्म्यहं तव प्रोस्ताहनाथमेतद्-
दुर्गराजम् । अथ त्वां स्ववर्मव्यभिप्रवृत्तयोक्ष्य प्रतिष्ठेऽह धर्मप्रवचनाय
'दुर्गान्तरम् ।

श्रीर तुम्हें साम्राज्य की समृद्धि के लिए चारो वरों और निपादो
को प्रयास करके प्रमन्न रहना चाहिए । क्योंकि—

जिस प्रकार विकलेन्द्रिय पुरुष व्यवहार की सफलता के लिए समार
में समर्थ होना है तथैव नृपति पाँचों वरों के समूह द्वारा साम्राज्यशक्ति
के लाभ हेतु सौभाग्य वी कल्पना कर सकता है ।७

शिवराज—भगवन् की महिमा में वशीभूत, इस जन पर शिष्य
समझकर आप कृपा करें ।

श्रीरामदास—वत्स, तुम केवल शिष्य होने के कारण मेरे प्रिय
नहीं हो बल्कि तुम मेरे दूसरे हृदय हो । मेरी मित्रि तुम्हारे ही अधीन
है । इसलिए मैं सावधानी से हमेशा तुम्हारे दिव्यव्यज वा प्रसार
देखता रहता हूँ । इस समय भी निरासहृदय तुम्हें प्रोस्ताहित करने के
लिए इस दुर्ग में उपस्थित हुआ हूँ । अब मैं तुम्हें अपने कर्म में प्रवृत्त
देखकर दूसरे दुर्ग में धर्म-प्रवचन करने जा रहा हूँ ।

शिवराज — भगवताऽनुपहृतोऽप जनो भूयो दर्शनेन ।

श्रीरामदास — भारतके वीर सपादयतु तवामीष्ट भगवती परदेयता । (इति निष्क्रान्त)

शिवराज — क कौऽप्र भो ।

द्वारपाल — (प्रविश्य) आज्ञापयतु देव ।

शिवराज — मन्त्रम् मार्गमादेशय ।

द्वारपाल — इत इतो देव । (उभौ परिक्रामत) हृतमन्त्रगृहद्वार प्रविशतु देव । (इति निष्क्रान्त) ।

शिवराज — (प्रविश्य) स्वागत मन्त्रिवराणाम् ।

मन्त्रिण — (उत्थाय) विजयता महाराज । (इति शिवराजमनु-पविशति)

द्वारपाल — (प्रविश्य) देव द्रष्टुकाम कोऽपि यवनतापसो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराज—भगवन्, इस जन को पुनर्दर्शन से अनुगृहीत करिये ।

श्रीरामदास—भारत के श्रेष्ठ वीर भगवती तुम्हारे अभीष्ट को पूर्ण करे । (चले जाते हैं)

शिवराज—कोन है ?

द्वारपाल—(प्रवेश कर) देव आदेश दें ।

शिवराज—मन्त्रगृह का द्वार दिखाओ ।

द्वारपाल—इधर, इधर से देख (दोनों चलने का नाट्य करते हैं) यह है मन्त्रगृह का द्वार प्रवेश करें देव । (चला जाता है)

शिवराज—(प्रवेशकर) मन्त्रिवर, स्वागत है ।

मन्त्री—(उठकर) विजय हो महाराज । (शिवराज के बैठने के बाद बैठता है)

द्वारपाल—(प्रवेशकर) देव, द्वार पर कोई यवनतपस्वी दर्शन के लिए आया है ।

शिवराजः—प्रवेशयेनम् ।

द्वारपाल.—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

धरः—(प्रविश्य) विजयतां देवः । कथमपि तं सह्यमूपकं गृहीत्वा
सखरमानयामीति बीजापुरेशतभायां प्रतिज्ञाय मार्गं च भवानीप्रतिमां
खण्डशः कृत्वा द्वादशसहस्रसैनिकदलेन सह सप्राप्तोऽथ पापाभ्या
बीजापुरसेनानायकः । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराजः—(आकर्ण्य सरोधम्) अरे जात्म

अनिदिततपनान्धयप्रताप, किमिति वृथा इयम् जल्पसे मवाग्ध ।

परधनपरिपुष्टमञ्जसा त्वां, महिषबलि परिकल्पये भवान्याः ॥८

नेताजीः—(सरोधम्) सद्य एव मां सत्यमततापिनो निग्रहार्थ-
माविशतु देवः । अद्यैवाह

शिवराजः—प्रवेश कराघो ।

द्वारपाल—जैसी आज्ञा । (बला जाता है)

धरः—(प्रवेशकर) विजय हो । बीजापुर नरेश का सेनापति उसकी
सभा में सह्याद्रि के मूपक को पकड़कर सीधे प्रतिज्ञा उसके सामने
प्रस्तुत करने की प्रतिज्ञा कर, मार्ग में भवानी की मूर्ति को खण्ड-खण्ड
करके बारह सौ सैनिकों का दल लेकर पहुँच चुका है । (बला जाता है)

शिवराजः—(मुनकर शोध में) अरे दठ ।

मदान्ध ! यह क्यों व्यर्थ में बकवास करता है ? क्या तुम्हें सूर्यवंश
के प्रताप का ज्ञान नहीं है । अस्तु । सीधे ही मैं, दूसरे के धन से
परिपुष्ट तुमको महिष की भाँति भवानी के लिए बलि के रूप में अर्पण
करूँगा ॥८

नेताजीः—(शोध-सहित) देव, उस आततायी को पकड़ने के लिए
मुझे तुरन्त आदेश दें । आज ही मैं—

कामक्रोधातिरेकव्यसनविवदलिते दुर्विनीतं मदान्ध,
स्वत्कोपाग्निप्रवग्ध परिणतविभव धायुवोऽन्त गत तम् ।
हत्वा नि शेषतस्तद्वत्तमतिविपुल तर्पयित्वा कृपाणम्,
जीवग्राह गृहीत्वा निगडितचरण तेऽन्तिकं प्रापयामि ॥६

शिवराज—(विचिन्त्य) वीर नाथ साहसप्रतिपत्तिरचिता ।
तत्त्वयाऽपिष्ठिता ।

प्रच्छन्न परिपन्थिनं परिचयं कुर्वन्त्वन्तत्वं स्वशा,
अध्यक्षा. स्वपदातिसादिनिवहान्संनाह्यपन्वृद्यताः ।

प्रच्छन्नमिति—स्वशा. चराः परिपन्थिना, रिपूणामन्तत्वं गाढ
परिचयं प्रच्छन्न कुर्वन्तु । अध्यक्षाः सेनाविभागाधिकृताः उद्यताः मन्तः
स्वपदातिसादिनिवहान् संनाह्यन्तु सज्जीकुर्वन्तु । दुर्गाधिपाः विश्वसाः
सन्तः दुर्गाणामवने रक्षणे भवहिता. सावधाना भवन्तु । सद्यः प्रतापं
रोपयितुं द्विषामन्तक. कालः उदित. प्रादुर्भूत ।

काम, क्रोध आदि व्यसनो से जर्जरित दुर्विनीत धीर मदान्ध
उसको, जो आपकी क्रोधाग्नि से जल रहा है, जिसका वैभव धीर धायु
पमात होने को है, मैं उसके समस्त सैन्य दल को मार अपना तलवार
की प्यास बुझाकर, अन्त में जीवित ही पकड़ धीर चरणो से बंधी
रहनाकर आपके सामने उपस्थित करता हूँ ॥६

शिवराज—(सोचकर) वीर, अभी साहस करने का समय नहीं
है । इसलिये तुम्हारे निरीक्षण में—

गुप्तचरों को सन्धियों के विषय में पूर्णतः परिचय प्राप्त करने दो,
पदाति, धत्वारोही आदि सेना-विभागों के अध्यक्ष उन्हें तैयार करे,

दुर्गाणामवने भवन्वचहिता दुर्गाधिपा निश्चला,
सद्यो रोपयिषुं प्रतापमुदित कालो द्विषामस्तक. ॥१०

नेताजी—पदाज्ञापयति देव । (इति निष्क्रान्तः)

द्वारपाल—(प्रविश्य) देव, अरातिनिसुष्ठो दूतो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराज—प्रवेशयेन्म ।

द्वारपाल—तथा । (इति निष्क्रान्त)

दृष्ट्याजी—(प्रविश्य) विजयतो महाराज ।

शिवराज—स्वागत विप्रथयंस्य ।

दृष्ट्याजी—अप्यनामय महाराजस्य ।

शिवराज—अय विम् ।

दुर्गा के अधिबारी, दुर्गा की रक्षा के लिए निरदल सावधान रहें, अब
हमें अपना पराक्रम दिखाने का अवसर है और दानुषो के विनाश
समय आ गया ।१०

नेताजी—ओ आना । (पता जाना है)

द्वारपाल—(प्रवेशकर) देव, दानु द्वारा प्रेषित दूत द्वार पर प्रतीत
कर रहा है ।

शिवराज—मन्दर से आओ ।

द्वारपाल—ओ आना । (पता जाना है)

दृष्ट्याजी—(प्रवेशकर) महाराज की जय हो।

शिवराज—विप्रथेष्ठ का स्वागत है ।

दृष्ट्याजी—महाराज कुतल तो है ।

शिवराज—ही ।

कृष्णाजी—देव उभयतः सेनिकानां विनाशपरिजिहोषुरावह-
यास्यस्मत्सेनापतिर्यं महाजेन स्वकुलपरम्परागतवृत्तिं स्वीकरणेन
परित्यज्य बीजापुरेशस्य विरोधमङ्गीकृतस्यो भूःपथमं इति ।

शिवराज—नास्त्यस्माकं बीजापुरेशेन सह कोऽपि विरोधः ।
किन्तु दुष्-सौभ्यस्त-धिकृतेभ्यः प्रजायाः पालनायमवायमस्मदुपक्रमः ।

कृष्णाजी—तन्महाराजेन स्वायत्तीकृतस्य प्रदेशस्याधिपत्ये तावद्
भविष्यति महाराजस्यैव नियोगः । तद्यथा बीजापुरेशासनमनुष्य-
शाहजीमहाराज कर्णाटप्रदेशं पालयति तथैव महाराजेन सह्यप्रदेशः
पालनीयः । एतदर्थं च महाराजेन यथावकाशं द्रष्टव्योऽस्मत्सेनापतिः ।

शिवराज—अत्र नास्माकं विप्रसिद्धिः । कः कोऽयं भोः ।

द्वारपाल—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देवः ।

कृष्णाजी—देव, दोनों धोर के सैनिकों का विनाश रोकने के लिए
हमारे सेनापति का निवेदन है कि क्षत्रुता को भुलाकर, परम्परा के
अनुसार बीजापुर नरेश का सेवक धर्म स्वीकार कर लें ।

शिवराज—बीजापुर नरेश से हमारा कोई विरोध नहीं है किन्तु
दुर्वृत्ति वाले अधिकारियों से प्रजा की रक्षा करने के लिए हम यह
साहस कर रहे हैं ।

कृष्णाजी—महाराज द्वारा अधिकृत प्रदेश पर महाराज का ही
आधिपत्य एव शासन रहेगा । जैसे बीजापुरनरेश के शासन को समाप्त
कर कर्णाटप्रदेश का पालन करते हैं उसी प्रकार सह्यप्रदेश का पालन भी
आपको करना चाहिए । इस लिए सुविधानुसार हमारे सेनापति से
भेंट करें ।

शिवराज—इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है । कौन है यहाँ ?

द्वारपाल—(प्रवेश कर) देव आज्ञा दें ।

शिवराज — प्रापयेत् विप्रवर्यभावेशिकमम्बिरम् । उच्यतां च मद्
वचनात्तत्राधिकृतो यदेव द्विजोत्तमो राजोपचारं सम्भावनीय इति ।

द्वारपाल — तथा । (इति वृत्तेन सह निष्ठा त)

शिवराज — मन्त्रिण , अनेन किमपि हृदये कृत्वाऽप्यदेव मन्त्रितमिति
सदयने । यत्

नयप्रयुक्तं मंथुरैर्ब्रह्मिभिः , प्रतारणाय ध्रुवमुद्यतस्य ।
कालुष्यमन्तः स्थितमस्य केवलं , ध्वनक्ति विच्छाद्यमुखच्छवि स्वगम् ॥११

मंत्री—एवमेतत् । यत्

नेत्रप्रसाद स्वयमानन्द्युति स्वाभाविको र्भय यव प्रवृत्ति ।
श्लेषोपचारो गतमप्यविकलवः , शिबुष्वतेऽन्तर्हृदयस्यमाजंषम् ॥१२

सत्कथमपि ज्ञातव्यमस्य मनोगतम् ।

शिवराज—इन द्विजश्रेष्ठ को प्रतिपिभवन में पहुँचाया । और मेरे
प्राप्तानुसार वहाँ के परिवारी से कहो कि इन द्विजश्रेष्ठ का राजोचित
रीति से सम्मान (मानिष्य) होना चाहिए ।

द्वारपाल—जो आज्ञा । (इन के साथ चला जाता है)

शिवराज—मन्त्रियो, यह घाने हृदय में कुछ और ही गुप्त रखकर
कुछ और ही शोचता है । क्योंकि—

नीनियुक्त मथुरवासी से हम लोगों को ठगने के लिए उद्यत इसके
मुख की धुँधली कान्ति इनके अनुपित घन्त करण का आभास करा
रहा है ।११

मंत्री—ऐसा ही है । क्योंकि

उसकी दुष्टि, मुग्धावृत्ति, वाणी की स्वाभाविकता, नियमित व्यवहार
और निर्भयता, उसके हृदय में स्थितकुटिलता का आभास कराते हैं ।१२
बिड़ी प्रहार हमें इसके मन की बात जाननी चाहिए ।

शिवराज—पूरे तावधवनसेनापतये विसृष्टोऽस्मद्वत्तमावे-
धयतु यद्

प्रमादस्तस्वादृतसाहस प्रभुर्महद्विरोधादनुत्पद्यमान ।

निरोक्ष्य नैत्रप्रतिघाति ते महो धैर्यं च्युत प्राथयते तवाधयन् ॥१३

अनेनोत्सिच्यमानः स मदान्धोऽस्मन्नपपाशधृतो भविष्यति ।

मन्त्री—सद्य एव प्रेषयामि पन्तोजीगोपीनायमेतदर्थसंसिद्धये ।

(इति निष्क्रान्त)

शिवराज—अहमपि तावत्प्रत्यायवृत विविक्त उपगृह्णामि ।

(इति भद्रगृहाभिर्गत्य परिक्रामति । परितो विलोष्य) अहो

निशेयमाक्रान्ततमिस्भीषणा, पापात्मना पापचिकीषिते हिता ।

स्वधर्मवक्षे नृपतौ तु जाप्रति, स्वपन्ति सर्वा अक्रुतोभया प्रजा ॥१४

शिवराज—सर्वप्रथम यवनसेनापति के पास अपना दूत भेजकर
कहलाएँ कि

प्रमादवश शिवाजी ने यह कार्य करने का साहस किया और अब यह
महाशक्तिशाली से विरोध करने के कारण पश्चात्ताप कर रहा है, शीखों
को चकाचौंध करने वाले आपके महातेज को देखकर धैर्य खो चुका है
और आपकी शरण चाहता है ॥३

इस प्रकार यवनो से सिंचित होकर वह मदान्ध हमारे नीतिपाश में
बंध जायगा ।

मन्त्री—शीघ्र ही पन्तोजी गोपीनाथ को इस कार्य की सिद्धि के
लिए भेजें । (चला जाता है)

शिवराज—मैं भी शत्रुपक्षीय दूत को छोड़कर आना हूँ । (मन्त्रणा-
गृह से निकलकर घूमना है । चारों ओर देखकर) अहो,

भीषण भ्रमकार से युक्त यह भयानक रात्रि पापकर्मियों के पापकर्म-
सम्पादन हित उपयुक्त है परन्तु धर्मनिष्ठ और कर्तव्य-वाला मे दक्ष
राजा सजग रहे तो उसकी प्रजा निर्भय होकर सोती है ॥४

- (पुरतो विलोक्य) एतदावेशिकमन्दिरम् । मावत्प्रविशामि ।
(ततः प्रविशति सुवर्णमञ्जावस्थितोऽरातिदूस.)

(पटोक्षेप.)

दूतः—(ससंभ्रममुत्थाय) अहो महाराजः । कोऽयं मध्य
साधारणोऽनुग्रहः ।

शिवराजः—(महाहंरत्नमुपायनोक्त्य) धर्म एवैव क्षत्रियाणां
यद् विप्रोपासनम् । (इति मञ्जान्तरमु पविशति)

दूतः—(उपविश्य) देव त्वादृशा धर्मज्ञा एवाहंति लोकत-
प्राधिकारम् ।

शिवराजः—विप्रवर्यं, सर्वत्र ब्रह्मोपितमेव क्षत्रं समुप्यते ।
बृहस्पतिपुरोगमा देवा विप्रपुरोगमाश्च राजन्या एव युज्यन्ते
विजयश्चैवेति पुराणप्रसिद्धिः ।

दूतः—महाराज संप्रति तु क्षत्रापचारपरिपोडितानां विप्राणां
धर्मज्ञोपाश्रयावृत्ते नास्त्यन्यदथलम्बनम् ।

(सामने देखकर) यह क्षत्रिधिगृह है । इसमें प्रवेश करूँ ।

[(स्वर्णमञ्च पर स्थित दानुद्रुत का प्रवेश)]

दूत—(पयड़ाया हुमा उठकर) अरे महाराज । यह अनुग्रह क्यों ?

शिवराज—(षट्कूल्य रत्न देते हुए) क्षत्रियों का धर्म ही ब्राह्मणों
की पूजा है । (दूसरे मञ्च पर बैठते हैं ।)

दूत—(बैठकर) आप जैसे धर्मज्ञ हो भोव-शासन के अधिकारी हैं ।

शिवराज—विप्रवर्यं, ब्राह्मणों का सहायता से ही क्षत्रियों की
समृद्धि होती है । पुराण लिख है कि बृहस्पति के नेतृत्व में देवता और
ब्राह्मणों के नेतृत्व में राजा विजय प्राप्त करते हैं ।

दूत—महाराज । इस समय क्षी क्षत्रियों के व्यवहार से पीड़ित
ब्राह्मणों के लिए बीजापुरनरेश के प्रतिरिक्त धर्म कोई भवलय नहीं है ।

शिवराज :—तथ्यमेवाभिहित विप्रवर्येण । अतएवंतान्नुपाप-
सवानुन्मूलयितुं मया शस्त्रमुद्धृतम् ।

दूत :—सर्वथाऽभिन्नस्य एव तव धर्म्यो व्यवसायः । परन्तु
प्रथममेव बलिना यज्ञनेशन विप्रहमारभमाणस्य तव महती नयच्युतिः ।

शिवराज :—संभाव्यमेतत् । तथापि न केवलं यवनसहाय एष
प्रभवति प्रशासितुं निजराष्ट्रं यवनेश्वरः । सन्ति तत्राप्यधिकृताः
स्वधर्मपरता धर्मघोरा ये पुनः समुपस्थित उपस्थये समोपकरिष्यन्ती-
त्यवधार्येव मयादत्त एव उपश्रम ।

दूत :—परन्तु स्वधर्मनिष्ठानामपि भर्तुं निष्ठापादनेन स्वपरिहार्यं
एव कृतघ्नतादोषः ।

शिवराज :—विप्रवर्ये, कोऽयं ध्यामोहो भवाद्दशानां वेदधर्म-
स्वविदुषाम् । 'स्वधर्मनिघ्नं श्रेय' इति तु साक्षाद्भगवतैव तार-

शिवराज—टिजधेष्ठ, सदा ही कह रहे हैं भाप । इसीलिए इन
दुष्ट राजाओं का समूल नाश करने के लिए मैंने शस्त्र उठाया ।

दूत—यह भापका धर्म-व्यवसाय सर्वथा प्रशंसनीय है । परन्तु
शक्तिसम्पन्न बीजापुरनरेश से युद्ध-धोषणा कर देना भापकी राजनीतिक
भूल है ।

शिवराज—भले ही यह सम्भव हो तथापि बीजापुरनरेश केवल
यवनों की सहायता से शासन नहीं कर सकते । उनके यहाँ धर्मवीर लोग
भी हैं जो आवश्यकता पडने पर कठिन समय में मेरी सहायता करेंगे,
इसी धारणा से मैंने यह प्रयास प्रारम्भ किया है ।

दूत—परन्तु अपने धर्म में निष्ठावान् रहकर भी, स्वामी के प्रति
निष्ठा का निर्वाह न करने पर कृतघ्नता का दोष होगा ही ।

शिवराज—विप्रवर्ये, भाप जैसे वेद और धर्म तत्व निष्ठा के लिए
भी धर्म (सकट) हो रहा है । 'अपने धर्म में रहकर मर जाना ही
श्रेयस्कर है' यह साक्षात् भगवान् ने उच्चस्वर में उद्घोषित किया है ।

स्वरेणोद्धोषितम् । यदि स्वधर्मनिष्ठानां धर्मार्थमात्मनाशोऽपि
 श्रेयास्तदा कियान् भर्तुं विप्रकारः । पुराऽपि धर्मार्थं

वज्रस्य निर्माणविधौ सुरार्थितां, स्वयं महर्षिस्तनुमप्यहासीत् ।

शिरः कुठारेण च जामवग्न्यश्चिच्छेद मातुर्गुण्णानि निमुक्तः ॥१५

दूतः—देव नात्र प्रयतंते मे प्रतिवचनम् ।

शिवराजः—अये द्विजोत्तम,

भवन्ति विप्रा यदि धर्ममूर्तयो, विरोधिनो धर्मपरस्य भूभृतः ।

तदा प्ररोहैः सह धर्मपादपः, समूलमुच्छेदमवाप्नुयाद् ध्रुवम् ॥१६

दूतः—(विचिन्त्य) कीदृशं साहाय्यमपेक्षते महाराजः ।

शिवराजः—केवल तत्त्वतो ज्ञातुमिच्छामि सेनापतेश्चि-
 कोपितम् ।

यदि अपने धर्म में निष्ठावान् रहकर धर्मार्थ आत्मनाश भी श्रेयस्कर है
 तो स्वामी के, अपमान से क्या ? प्राचीनकाल में भी धर्मार्थ—

महर्षि दधीचिने देवों की याचना सुनकर वज्र-निर्माणार्थ अपना
 शरीर त्याग दिया । परशुराम ने पिता के वचन का पालन करने के
 लिए माता का शिर कुठार से काट डाला । १५

दूत—देव, इसके विरुद्ध मैं कुछ नहीं कह सकता ।

शिवराज—द्विजथोष्ठ,

धर्ममूर्ति ब्राह्मण यदि धर्मनिष्ठ राजा के विरोधी हो जाय तो
 धर्मवृक्ष का उसकी घाघामो-सहित निश्चित ही समूल नाश
 सम्भव है । १६

दूत—(सोचकर) कौसी सहायता आप चाहते हैं महाराज ?

शिवराज—सेनापति की योजना मात्र सही-सही जानना
 चाहता हूँ ।

दूत :—(स्वगतम्) किं कर्तव्यो मया रहस्यभेदः । उतघातितव्यो धर्मावतारः । अस्तु । धर्मावतारस्यैव रक्षणो न रक्षितो भविष्यति धर्मो नान्यथा । (प्रकाशम्) देव न किमप्यस्ति तथावाच्यम् । तच्छृणु । कथमपि त्वां विश्वास्यात्मनः प्रतिज्ञां निर्याहयितुमुत्कण्ठतेऽस्मत्सेनापतिः ।

शिवराजः—अहो नु खलुज्जोवितोऽस्मि । द्विजोत्तम न कदापि स्मृतिपथमतीतो भविष्यति तवापमनुग्रहः । परंत्ववशिष्यते किञ्चिदकर्म-ध्यान्तरम् ।

दूतः—निशङ्कुमाख्यातु धर्मवीरः ।

शिवराजः—विप्रवर्ये, 'अतोव भयाकुलो शिवराजः महता संन्येन परिवृतं त्वामुपाश्रयितुं न धृष्येति । अतो दुर्गपरितर प्रतिष्ठापितोपकार्यामुपेत्य स्वयंकाकिना स हस्तगतः कर्तव्यः ।

दूत—(स्वगत) क्या रहस्यभेदन मुझे करना चाहिए । क्या धर्मावतार की हत्या होने दूँ ? धर्मावतार की ही रक्षा करने से धर्म की रक्षा होगी अन्यथा नहीं । (प्रकाश) देव कुछ नहीं है, जो श्राव से छिपाऊँ । अतः सुनिए । हमारे सेनापति किसी प्रकार आपको विश्वस्त करके अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करना चाहते हैं ।

शिवराज—द्विजश्रेष्ठ, आपका यह अनुग्रह कभी भी भूल नहीं सकता । परन्तु इसके प्रतिरिक्त भी कुछ करना शेष है ।

दूत—निदेशक होकर कहो धर्मवीर ।

शिवराज—द्विजश्रेष्ठ, अपने सेनापति से कहो-‘विशाल सेना से विदे हुए रहने के कारण अत्यन्त भयभीत शिवराज आपके पास आने का साहस नहीं कर सकता । अतः दुर्ग के समीप राज-शिविर में आप प्रवेश करके उसे मिलकर हस्तगत कर लीजिए । अन्यथा उसके बर्ही

अन्यथा तस्मिन् कुत्रापि पलायिते तव प्रतिज्ञाहानिप्रसङ्गः ।'—इति तस्मनुनीय संपादयावयोरेकान्त समागमम् । अतः परं यद्भावि सद्भवतु ।

दूतः—देव अत्र विश्रब्धा भव । स्वया पुनरात्म दूतमुखेनंतदेव तस्य संदेष्टव्यम् ।

शिवराजः—तथा ।

दूतः—सद्य एव तावत् प्रतिष्ठे देवस्याभीष्ट संपादनाय ।

शिवराजः—अहमपि मन्त्रगृहमुपेत्य प्रतिपालयामि चरमाध्य-
वसायम् ।

(इति निर्गत्य परिक्रामति)

(स्वगतम्) दिष्ट्या सुसंपन्न एव पूर्वरेङ्गः ।

क्षेत्रेऽपि सीरोत्कपणावकल्पिते, उप्त्वा सुबीजानि समृद्धभूमौ ।

समुद्रपतेर्धेव नवाङ्कुरेषु, क्षेत्रो समुत्पश्यति शस्य संपदम् ॥१७

भाग जाने पर आपकी प्रतिष्ठा पूर्ण नहीं हो पायेगी ।' इस प्रकार हम दोनों का एकान्त मिलन करायें । उसके पश्चात् जो होना होगा, होगा ।

दूत—देव, विश्वास रखें । माप भी ऐसी ही सूचना अपने दूत से भिजवा दें ।

शिवराज—ठीक है ।

दूत—देव का अभीष्ट पूर्ण करने के लिए मैं चला ।

शिवराज—मैं भी मन्त्रणाश्रुह में पहुँचकर परिणाम की प्रतीक्षा करता हूँ ।

(उठकर चलता है)

(स्वगत) भाग्य से पहली योजना सफल हुई ।

कृषक खेत की हल से भली भाँति जोतने के पश्चात् अच्छे बीज बोकर, जब उसमें नव अंकुरों को उगा देखकर शस्य की अच्छी पैदावार की प्राप्ति करता है ॥१७

अनेनाक्षितेऽपि भाविविजये कथं निर्वृतिं नाधिरोहति
मेऽन्तरात्मा । पावदन्तः पुरमुपेत्याभ्यया सह संमन्त्रये । (पुनः परिक्रम्य)
अहो सा नु मामेव प्रतिपालयन्त्यद्याप्यवतिष्ठते ।

(इति अन्त पुरे प्रविशति)

(पटोक्षेपः)

(ततः प्रविशति राजमाता राज्ञो च)

राजमाता—वत्स, अप्यनुकूलितः प्रत्यायिदतः ।

शिवराजः—अयं किम् परः नु कदाचिद् देवतोऽत्र विपरीतमावद्येत
तदानो त्वयाऽपिठितेनोमाज्ञोराजेन प्रवर्तनीयः स्वराज्यसंस्थापनोद्योगः
इत्येषा ममाभ्यर्थना ।

राजमाता—वत्स, देवतानुग्रहशालिनस्ते नास्त्यपायः शङ्कावसरः ।

तद्

इस सफलता से भावी विजय सम्भावित हो जाने पर मेरा हृदय
शान्ति बयो नहीं पा रहा है । चलो अन्त पुर में माता जी से मन्त्रणा
करें । (पुनः प्रमत्तः) वह तो इस समय भी मेरी प्रतीक्षा करती हुई
बैठी है । (अन्त पुर में जाते हैं)

(पट-परिवर्तन)

(उसके पदवात् राजमाता और राज्ञो का प्रवेश)

राजमाता—वत्स, शत्रुपक्षीय दूत को अनुकूल कर लिया ?

शिवराज—हाँ, परन्तु कदाचित् दुर्भाग्य से प्रतिकूल हो जाय ?
उस स्थिति में मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि स्वराज्य-संस्थापना
का जो उद्योग प्रारम्भ है वह आप बलाती रहे ।

राजमाता—वत्स, देवताओं का तुम्हारे ऊपर अनुग्रह है, हानि
की बाँका का अवसर नहीं है । अतः

धवनपादिपवाति समुद्धतं, रिपुबलं परिमुद्य रणाङ्गणैः ।
विजयदुन्दुभिनिः स्वनलन्वितः, पुनरुपेत्य विनोदय मातरम् ॥१८

पत्न, रक्षतु त्वां समन्ततः समराधिष्ठात्री परदेवता ।

शिवराज :—शिरसाऽभिनन्द्यन्ते तवाशियः ।

राजमाता—परास्ताः सन्तु ते विद्विषः ।

राज्ञी—विजयधोविलसितस्य भवतु तवाचिरेण मङ्गलागमनम् ॥

शिवराज :—कः कोऽत्र भोः ।

कंचुकी—(प्रविश्य) आज्ञापयतु देव ।

शिवराज :—मन्त्रगृहमार्गमादेशय ।

कंचुकी—इत इतो देवः । (उभौ परिक्रामतः)

(पटीक्षेप.)

एतन्मन्त्रगृहद्वारं प्रविशतु देव । (इति निष्क्रान्त)

मुगलों की भ्रश्वारोही, पैदल सेना-मुक्त शक्ति शाली (शत्रु) बल का रणक्षेत्र में मर्दन कर विजयदुन्दुभि के स्वर से हृषितमन आकर माता को भानन्दित करो । १८

पत्न, परमाशक्ति रणदेवी हर प्रकार तुम्हारी रक्षा करें ।

शिवराज—तुम्हारा आशीष शिरमाधे ।

राजमाता—तुम्हारे शत्रु परास्त हो ।

राज्ञी—विजयध्री से शोभित शीघ्र ही तुम्हारा मंगलागमन हो ।

शिवराज—कौन है ।

कंचुकी—(प्रवेशकर) आज्ञा दें देव ।

शिवराज—मन्त्रगृह का मार्ग दिखाओ ।

कंचुकी—इधर, इधर से देव । (दोनों चलने का नाट्य करते हैं)

(पटपरिवर्तन)

यह मन्त्रगृह का द्वार है देव पत्नी । (चला जाता है)

(सत प्रविशन्ति मश्रुगृहावस्थिता मन्त्रिणो दूतश्च)

शिवराज—(प्रविश्य) अण्डुपस्थितोऽस्मद्गतः ।

मंत्री—एष देव प्रतिपालयस्तिष्ठति ।

शिवराज :—(दूतं प्रति) किमध्यवर्तितं यवन सेनापतिना ।

दूत .—जातमभोष्ट देवस्य । अद्य प्रातरेवायमभिकाकति वेचस्य
समगमावसरम् ।

शिवराज .—भद्र सद्य एव निवृत्य तमावेदय 'दुर्गोपत्यकायामुप-
कल्पितामुपकार्यामुपेत्य यथासमयं त्वया दृष्टव्यः शिवराजः' इति ।

दूत—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराज .—सचिव एव ताच्छीघ्रमुपत्यकायां हिरण्यरत्नमण्डिता-
मुकार्यामुकल्पय ।

सचिव .—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

(उसके बाद मंत्री एवं दूत मन्त्रालयगृह में स्थित दिव्यायो पढ़ते हैं)

शिवराज—(प्रवेशकर) क्या हमारा दूत वापस हुआ ?

मंत्री—देव की प्रतीक्षा में यह बँटा है ।

शिवराज—(दूत से) यवन सेनापति ने क्या निर्णय किया ।

दूत—देव की इच्छानुसार ही हुआ । प्रातःकाल ही देव से मिलना
चाहते हैं ।

शिवराज—शीघ्र ही लौटकर जाओ और सूचित करो कि दुर्ग के
समीप राज शिविर में निर्दिष्ट समय पर शिवराज से मिले ।

दूत—जो आज्ञा । (चला जाता है)

शिवराज—सचिव, तुम शीघ्र ही दुर्ग के निकट बगल में हिरण्य
रत्नों से सज्जित शिविर निर्मित कराओ ।

सचिव—जो आज्ञा । (चला जाता है)

शिवराज :—सेनापते इव सायच्छूलोऽस्तङ्गपादपाङ्गरितयवा-
तिनिवहो मार्गे एव मां प्रतिपालय ।

नेताजी :—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

मन्त्री—देव सायुधवर्मधरेण इवया द्रष्टव्य कुटिल परिपन्थी ।

शिवराज :—प्रतिपद्येऽहं मन्त्रिवचनम् ।

(इति वर्म शिरस्त्राण दृष्टिकास्त्रं ध्यात्प्रनखादच धारयति)

मन्त्री—धम भयतु तानाजीवीरस्तव सहाय ।

तानाजी —पूर्वमेवादिष्टोऽस्म्यम्बया घृतयवनसमागमे तव
पाश्र्वंचरो भवितुम् ।

शिवराज :—जीवितसशयेऽहिमन्वतिकरे त्वमेवाहंसि मम
पाश्र्वंस्थानम् । (ऊर्ध्वं बिलोषय) । अहो प्रभातकल्पा हि रजनो ।
धावत्साधयाम । (इति सपरिवारः तुरगमाह्वय परिश्रामति)

शिवराज—सेनापति, तुम पर्वत के पास घुसो की छाड़ मे अपनी
पंदल सेना के साथ मुझे रास्ते मे मिलें ।

नेताजी—जो आशा । (चला जाता है)

मन्त्री—देव, शस्त्रास्त्र सहित कवच धारण करके आप उस कुटिल
रानु से मिलें ।

शिवराज—मन्त्रिवर के कथनानुसार ही मैं कहूँगा ।

(कवच, शिरस्त्राण, दृष्टिकास्त्र, वधनख धारण करने हैं)

मन्त्री—तानाजी वीर आपके सहायक रहें ।

तानाजी—घूर्त यवन से समागम के समय आपका अंगरक्षक रहने
के लिये राजमाता ने पहले ही आदेश दिया है ।

शिवराज—हाँ, इस समय जब मेरा जीवन सबटमय है, केवल
तुम ही अंगरक्षक के रूप मे साथ रहने योग्य हो । (ऊपर देखकर) ओह
रात्रि समाप्त, प्रभात होने वाला है । हम प्रस्थान करें । (सेवकों के
सहित छोटे पर चढ़कर घूमता है)

(परितो विलोक्य) अमात्य क्षण भाशेणं व संप्राप्ता वय
 शैलावरोहसंक्रमम् । एषोऽस्मदागमन प्रतीक्षमास्तिष्ठति सपरिजनो
 नेताजीः । (तत प्रविशति सपरिजनो नेताजी)

नेताजी :—(दूरं विलोक्य) अहो, उपस्थितो देव ।

प्रजवतुरगकल्पितासभोऽयं, वयवधर करवालकुन्तनद्वः ।

अक्षयितनयनो वृथा महोय ; सरनसमेत्वभितो द्विषा कृतान्तः॥१६

(शिवराजमुपसृत्य) विजयता देव । अस्ति सर्वं मुष्यवस्थितम् ।

शिवराज :—(परितो विलोक्य) धीर पदय,

एतद्विषदतयगुल्मलतावितानमुत्सङ्गवति गहन गहनान्तरालम् ।

प्रच्छन्नसहवमभित पवनावधूतमुत्तोन्वीचित्रलयेः समता विद्यते ॥२०

नेताजी :—देव, अत्रं व निलीयन्तेऽस्मत्सैनिक निवहा ।

(चारो ओर देखकर) अमात्य, क्षणभर में ही हमलोग पर्वत की
 तलहटी के सकीर्ण भाग पर पहुँच गए । नेताजी हमारे आगमन की
 प्रतीक्षा में सापियों के साथ बैठे हैं । (उसके बाद सैनिकों-सहित नेताजी
 का प्रवेश)

नेताजी—(दूर देखकर) अहो, देव आ गए ।

तीर्थगामी सुरग पर सदा, वयव धारण किये, तलवार, माला
 लिए, लाल-लाल भासों ओर महत्तेज के कारण मयानक, राशुओं के
 लिये यमराज खले आ रहे हैं ॥१६

(शिवराज के पास पहुँचकर) विजय हो देव । सब कुछ मुष्यवस्थित
 है ।

शिवराज—(चारो ओर देखकर) धीर देखो—पर्वत के पार्वं में
 यह वृक्ष, गुल्म ओर वितान के कारण गहन वन, जिसमें सर्वत्र प्राणियों
 का निवास है, वायु चलने के कारण झान्दोलन से सहरे ही उठने से
 सारा वन समृद्ध की समता प्रकट कर रहा है ॥२०

नेताजी—देव, यहीं हमारे सैनिक दिये हुए हैं ।

शिवराज — त्व तावच्चङ्गस्वनेनास्मसकेत गृहीत्वा द्रुतमभिपुङ्ग
श्वाराति संघम् ।

नेताजी — यद्देव आज्ञापयति ।

शिवराज — वय तावत्पुरतो यज्ञाम । (इति सपरिवारो
निष्क्रान्त)

नेताजी — पदाति सेनापते, अत्रगमय संनिकान् सकेतक्रमम् ।

एसाजी — तथा । (इति निष्क्रान्त)

नेताजी — गुल्माध्यक्ष, सञ्जी कुरु वंतालिकगणान् भ्रयाणपटह-
व्यननाप ।

गुल्माध्यक्ष — यदपर्यं आज्ञापयति । (इति निष्क्रान्त)

एसाजी — (प्रविश्य) आय गृहीत सकेतक्रम संनिकगणं ।

नेताजी — साधु ।

शिवराज—तुम हमारे शृङ्गनाद (बिगुल की आवाज) का संकेत
पाकर तुरन्त सत्रु सेना पर आक्रमण करना ।

नेताजी—जैसी आज्ञा देव ।

शिवराज—हम भागे बढ़ते हैं । (सिवको सहित जाते हैं)

नेताजी—सेनापते, संनिको को संकेत समझा दें ।

एसाजी—जो आदेश । (धला जाता है)

नेताजी—गुल्माध्यक्ष-वंतालिको को प्रस्थान कालीन नगाड़े बजाने
से लिए तैयार करें ।

गुल्माध्यक्ष—जैसी आपकी आज्ञा । (धला जाता है)

एसाजी—(प्रवेश कर) भायं, संनिकगण संकेत का अर्थ भली
भाँति समझ लिए हैं ।

नेताजी—ठीक है ।

गुल्माग्र्यक्षः—(वंतालिकः सह प्रविश्य) आर्य उपस्थिता यथा-
 यैशमेते वंतालिका ।

नेताजी —(तारस्वरेण) भवत सर्वे सावधाना ।

—(पटीक्षेप)

(शृङ्गध्वनिमाकर्ष्यं) प्रवर्तन्तां वो रणातोद्यानि । शीघ्रमभि-
 सरत सर्वे सेनानिवहा । (इति सपरिजनो निष्क्रामति)

वंतालिकः—(षट्शृङ्गध्वनिनोद्गायन्ति । नेपथ्ये पावाघातः ध्वनिः ।

(भूपालीरागेण दादरातालने गीयते)

भट्टा नदताट्टमेव—हर हर हर महादेव ॥

प्रकटयत कदप्रतापमरिकुलघटितोपतापहृष्टा, नदताट्टमेव०॥१

प्रबलराज्यमविकारकुटिलपरकृतापकारहृष्टा, नवता०॥२

गुल्माग्र्यक्ष—(वंतालिकों के साथ प्रवेश कर) आदेशानुसार ये
 वंतालिक उपस्थित हैं ।

नेताजी—(तीव्र स्वर में) सभी सावधान हो जाओ ।

(शृङ्ग का स्वर सुनकर) नगाड़े बजाओ । सभी सैन्य समूह तुरन्त
 प्रस्थान करें ।

वंतालिकगण—(नगाड़े की ध्वनि के साथ गाते हैं । नेपथ्य में पंरों
 की ध्वनि) (भूपाली राग, दादराताल में गाय जाता है)

बीरो, तीव्रस्वर से बोली—हर, हर, हर महादेव ।

मपने शौर्य, पराक्रम को प्रकट कर शत्रुस को सन्तप्त करो
 उससे हर्षित हो, राज्यमद के दुरभिभागी, प्रबल, कुटिल दूसरों को
 कष्ट देने के कारण उसके मपकार से दष्ट होकर, पीड़ित बाणों और

निशितशरकृपाणपातसाधितरिपुकटकघाततुष्टा, नदता०॥३
विजयपटहपट्टनिनादवाटितपरिपणियभादकुष्टा नदताट्टमेव०॥४

(निष्क्रान्ता सर्वे)

समाप्तोऽयं द्रुत भेदनामा

चतुर्योऽङ्कः.



कृपाण के सन्धान द्वारा शत्रु-सेना पर घात करके सन्तुष्ट, विजय-
दुन्दुभि के निनाद से शत्रुके मद को दान्त करके, वीरो तीव्र स्वर में,
मट्टहास-सहित बोली—हर, हर, हर महादेव ॥

(सभी चले जाते हैं)

द्रुतभेद नामक

चौथा अंक समाप्त



पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशतो गूढधरो)

प्रथम — नूनं यद्युः प्रकर्षावलिप्तस्य यवनमातङ्गस्य यथेन समुपार्जितं लोकोत्तरं यशो देवेन ।

द्वितीय — अर्जितं त्वैतत्प्राणसंशयेन ।

प्रथम — अहो क्वयं नामैतत् ।

द्वितीय — घालिङ्गनमिषेणात्मी जाल्मी देवः कक्षास्तरे सपीडय मायवसिप्रहारेणास्मि शिरो भेत्तुमुदुपुडुक्तं तावदेव देवेन व्याघ्रनख-
विपाटितमस्य बृहत्तुन्दुम् । देवस्य शिरस्त्राणेन च विकलीकृतोऽस्य
मिस्त्रिंशत्प्रहारः । अत्रान्तरे साहाय्यामथमाक्रोशतस्तस्य पूवकायो
विच्छिन्नश्चण्डविक्रमं करसेन धर्मावितारेण देवेन । तदानीमेव देवः

पाँचवाँ अंक

(उसके बाद दो गुप्तधरो का प्रवेश)

प्रथम—निश्चित ही, शरीराभिमानी यवन सेनापति का वध कर
आरे देव को लोकोत्तर प्राप्त मिला ।

द्वितीय—प्राप्त तो हुआ, प्राण संशय में डालकर ।

प्रथम—यह किस प्रकार ?

द्वितीय—बहु घात, जैसे ही देव को घालिङ्गन के बहाने अपने कक्ष
में ले जाकर तलवार से उनका शिर काटना चाहा, देव ने बधनख द्वारा
असके उदर को फाड़ डाला । उसकी तलवार का घात देव के शिरस्त्राण
पर पड़कर निष्फल हो गया । उस बीच सहायता के लिए चिल्लाते
ए उसके घात को प्रचण्ड विक्रम वाले धर्मावितार देव ने विच्छिन्न कर

प्रदुर्मुचतस्तस्याङ्गरक्षको यमसदनं प्रेषितस्तानाजीवीरेण । ततश्च सकेतानुरोधेनाक्रम्य परास्त बीजापुरेशसंग्यमस्मत्सेनापतिना नेताजीवीरेण ।

प्रथम —उत्तमनेन खलु साम्राज्यबीजं महाराजेन ।

द्वितीय —अथ किम् । ततः प्रभृति युद्धे ग्रहीतभुक्ता यवनसैनिका अपि विहाय यवनेन महाराजाभ्रयमन्विष्यन्ति ।

प्रथम —भवन्ति सर्वेऽपि न्यायप्रवृत्तस्य पक्षपातिनः ।

द्वितीय —अनन्तर च विजित्य पन्हालाप्रभृतीन् यवनदुर्गान् जुञ्जरप्रभृतींश्च मोगलदुर्गान् प्रवर्तित तत्र धमचक्रं महाराजेन । ततश्च भावियवनाक्रमणमपेक्षमाणो देवो नानादुर्गसंरक्षणार्थं मन्त्रिणो नियुज्य स्वयं पन्हालादुर्गमध्यास्त । अचिरैर्लंकावत्क्रीड्य दुर्गराज

दिया । उसी समय देव पर प्रहार करने के लिए उद्यत उसके अग्र रक्षक को तानाजी वीर ने यमलोक को भेज दिया । उसके पश्चात् पूर्व नियोजित सकेतानुसार हमारे सेनापति नेताजी वीर ने आक्रमण करके बीजापुर प्रदेश की सेना को परास्त कर दिया ।

प्रथम—इस प्रकार हमारे महाराज ने साम्राज्य-स्थापना का बीजारोपण कर दिया ।

द्वितीय—धीरे धीरे, उसके बाध युद्ध में बन्दी बने यवन सैनिक मुक्त होने पर यवनराज को छोड़कर महाराज का आश्रय चाहते हैं ।

प्रथम—सभी न्यायप्रिय के ही पक्षपाती होते हैं ।

द्वितीय—धीरे उससे पश्चात् पन्हाला और जुञ्जर आदि मुगल दुर्गों को जीतकर महाराज ने धर्मराज्य स्थापित कर लिया । कि यवन आक्रमण की सम्भावित आशंका से, देव दुर्गों के संरक्षणार्थ मन्त्री को नियुक्त कर स्वयं पन्हाला दुर्ग में स्थित हैं । शीघ्र ही इस दुर्ग पर पचीस हजार सैनिकों को लेकर यवन सेनापति ने आक्रमण

यद्द्विंशतिसहस्रदलसमन्वितेन यवनसेनापतिना । ततो महता नय-
प्रयोगेण प्रतार्यं त यवनसेनापतिमतीतायां तमस्विन्या निशीथ इय
निभिद्यावरोधकगणमल्पपरिजन. प्रस्थितो देवो विशालगडदुर्गम् ।)

प्रथम :—अहं तावत्सुगुप्तेन यस्मिन्ना त्र्यंशोपेत्य आवयामि देवं
भोगसेनोदन्तजातम् ।

द्वितीय :—अहमपि प्रविश्य यवनदलमुपलभेय तस्सेनापते-
श्चिकीपितुम् ।

(तत [प्रविशति विशालगडदुर्गोपर्यकावस्थित सपरिजन
शिवराज.)

बाजी :—देव विष्ट्या सप्राप्ता वयं विशालगडदुर्गपरिसरम् । पश्य
विशालवप्रोन्नतगण्डभिस्त्रिदुर्गकमो हस्तपिताप्रमार्गं ।
दुर्गोत्तमोऽय परिणद्धपाश्वर्षो ; महेन्द्रमातङ्ग निभो विभाति ॥१
तस्त्वस्वरमेनमधिरोहतु भारतेन्द्रः ।

किया । उसके पश्चात् कूटनीतिक षाल से उसे ठग कर, रात रात्रि में
देव ने अवरोधको के बीच से घपते छोड़े से सेयकी सहित विशालगड
दुर्ग को प्रस्थान कर दिया ।

प्रथम—तो मैं गुप्तमार्ग से वहाँ पहुँचकर मुगल सम्राट् के क्रिया
कलापो से अवगत कराऊँ ।

द्वितीय—मैं भी यवनदल में प्रविष्ट होकर उसके सेनापति की
नीति का ज्ञान प्राप्त करूँ ।

(उसके बाद विशालगड दुर्ग में सेवको सहित शिवराज लड़े हैं)

बाजी—देव, भाग्य से हम लोग विशालगड दुर्ग के पास पहुँच गए ।
देखें उत्तम यह विशालगड दुर्ग, अपनी विशालता, ऊँचे-ऊँचे गुम्बदों के
कारण, उन्नत गण्डस्थल के सदृश, सूड की भाँति अश्रमाय वाला, दुरा-
क्रमणीय, विस्तृत पार्श्वभाग से शोभित इन्द्र के गज ऐरावत की शोभा
धारण कर रहा है ।१

हे भारतेन्द्र ! तुरन्त इस पर चढ़ें ।

शिवराज—(परितो विलोच्य) वीर

आसीन्नभो यद्विशद समन्तावाच्छादितं किं घनमण्डलम् ।

(विबिन्द्य ससंभ्रमम्)

एतद् ध्रुवं मानुषावतां द्विषां, पादोद्धतं रेणुभिरंरितं घूसरम् ॥२

तदत्र यत्प्राप्तकृतं तदस्माभिरविसन्वेनानुष्ठेयम् ।

बाजी :—देव नास्ति तयात्रीत्सुख्य कारणम् । यतः

दासस्तवायं करवालपालि, संबाधवर्त्मन्यकुतोभयः स्थितः ।

अल्पानुगे. शत्रुदलं निपातयन्; निरोत्स्यति द्राक परिपन्मितंचरम् ॥३

(दूरं विलोच्य ससंभ्रमम्) देव, त्वरय, त्वरय । सम्प्राप्तं यवनदलम् । अधिष्टह्य च दुर्गमावेदय मां पद्मभिः दासघ्नोस्वर्नैस्तव तत्र सुखोपस्थितिम् । यावद्गृहेतानत्रैव प्रतिरुणामि ।

शिवराज—(चारो ओर देखकर) वीर,

विस्तृत आकाश चारों ओर घन मण्डल से घाच्छन्न हो उठा (घबड़ाहट से सोचकर) निश्चित ही यह मेरा पीछा करते हुए शत्रुओं के पादाघात से उठी धूल से घूसरित हो रहा है ।२

इसलिए हम सोग प्राप्त समय का लाभ क्षीघ्र उठावें ।

बाजी—देव, उतावला होने की आवश्यकता नहीं है । क्योंकि—

भापका यह दास हाथ में तलवार लेकर अल्प संख्यक सैनिकों के, ही सहारे शत्रुदल का का नाश करते हुए क्षीघ्र ही उनका बड़भा रोक देगा, इस प्रकार बाधायुक्त मार्ग में मेरे स्थित रहते भय कहीं ।३

(दूर देखकर, भ्रम में) देव, क्षीघ्रता करें, क्षीघ्रता करें । यवनों का दल धा पहुँचा । दुर्ग में पहुँचकर भाप पाँच तीपों के स्वर से घपनी सुस्थिति की सूचना दें । मैं तब तक इन सब को इसी स्थान पर रोकता हूँ ।

शिवराज—धीर, स्वामशरणाभयमस्तुज्य कथमत्सहे पदमपि
पुरतः प्रक्रमितुम् ।

बाजी—देव नायमवसरो युक्त युक्त विचारस्य ।

स्वदन्तपानादिविवाधितोऽय, महमीभवेच्चेदवने तवेष ।

तवास्य चर्मास्थिविनिमित्तस्य, वेहस्य मन्ये कृतकृत्यतां पराम् ॥४

शिवराज—मन्योऽसि मे भृत्यं कवीर । रक्षतु ह्यं परदेवता ।

मङ्गलरक्त — इत इतो देव । (उभौ सत्वर परिक्लामत)

शिवराज—(स्वगतम्) यत्सत्यम्

राष्ट्रं कभक्तिप्रपद्ये प्रगल्भं, सखोच्छ्रितं देव रणप्रवीरं ।

उपासित सद्य उपैति भूमिष, स्वातन्त्र्यदेव्या प्रणयस्य पात्रताम् ॥५

शिवराज—धीर, तुम्हें असहाय, एकाकी छोड़कर एक कदम भी
मैं भागे कैसे जा सकता हूँ ?

बाजी—देव, इस समय उचित—मनुषित सोचने का अवसर
वहीं है ।

चर्म और अस्थि से बना यह शरीर जो प्राण के धन्त एक पानादि
से पालित—पोषित हुआ है, यदि भावने जीवन के ही लिए भस्म
हो जाय तो इसे अत्यधिक कृतकृत्य मानूँगा ॥४

शिवराज—धीरथेष्ठ, तुम धैर्य हो । परमाक्ति तुम्हारी
रक्षा करे ।

धगरक्त—इधर, इधर से देव ! (दोनों पीछना से चलने लगे)

शिवराज—(स्वगत) यत्सुत

जिसके पास राष्ट्रभक्त, ताहसी, बलवाली, मुँडभूमि में पराक्रमी
सेवक हों, वह नरेश पीछ ही स्वातन्त्र्य देवी का शिष्य पात्र बन
जाता है ॥५

अगरक्षक :—एतद्दुर्गपालाधिष्ठितं विशालगडदुर्गस्य सिंहद्वारम् ।
(पटोक्षेव)

(तप्त. प्रविशति सिंहद्वारावस्थितो दुर्गपाल.)

दुर्गपाल :—स्वागत देवस्य ।

शिवराज :—प्रथमं तावत्सूचयात्मनुपस्थिति पञ्चभि शतघ्नी-
विस्फूर्जितैः ।

दुर्गपाल :—तथा । (इति यथाविष्ट कुरुते)

शिवराज :—(बामबाहुस्पन्दनं सूचयित्वा) अरे कोऽयं बंकृतागमः ।

तृणाय मत्वा निजजीवितं कृत, प्राणान्तकट्टे मम येन रक्षणम् ।
घृकावृत्तस्यैव गजस्य तस्य मे, भद्रे मनः संशयमेव गाहते ॥६

सैनिकः (प्रविश्य) (ससंभ्रमम्) देव हतो बाजीप्रभुः ।

अगरक्षक—यह दुर्गपाल से रक्षित विशालगडदुर्ग का सिंहद्वार है ।
(पट-परिवर्तन)

(उसके बाद सिंहद्वार पर स्थित दुर्गपाल का प्रवेश)

दुर्गपाल—देव का स्वागत है ।

शिवराज—सबसे पहले पाँच सौपो की ध्वनि द्वारा मेरी उपस्थिति
की सूचना दे दो ।

दुर्गपाल—जो आज्ञा ।

(आदेशानुसार करता है)

शिवराज—(बायाँ बाहु फडकने की सूचना देते हुए) अरे यह
अपशकुन क्या है ?

भद्र, मेरा हृदय अभी भी टका ही मे है—जो घृको (भैंसियों) से
घिरे हाथी के समान है, और जिसने अपने जीवन को तृणवत् मानकर,
मेरे प्राणसकट पर रक्षा में तत्पर है, रक्षित रह सकेगा ॥६

सैनिक—(प्रवेशकर, घबड़ाहट में) देव, बाजी प्रभु मारे गये ।

शिवराज :—(निःश्वस्य) हा हता हमः । (सरोवम्) के पाप
शिद्दिहतक कोऽयमपचारः

एकाचिन समरवीरमिमं समंतैर्व्यापाद्य संनिकगणैः बबन्तु विक्रमस्ते ।

प्रिय भूतपंकवीर,

आत्मार्पणेन तव पालयतो निजेश, शुभ्रं यशस्तु परितो विततं त्रिलोक्याम् ॥७

अरे विस्तरेण श्रोतुमिच्छामि ।

सैनिक :—देवस्य प्रस्थानाद्यनन्तरं समन्ततोऽभिपततोऽराति निय-
हान् सपञ्चशः कृत्वा पञ्चविंशतिसतनिः सूतरक्षतरञ्जितगात्रेण प्रवीरेण
रक्षितो दुर्गारोहमाणः । तदानीमसौ

आकूटभीषणकृपाणकरासपाणि—
शिद्यन्तोसमाङ्ग रिरिपुसंन्यकबन्धकीर्णम् ।
माणं निदप्य सहसा समरप्रवीर—
इषण्डप्रकोपहतभुग्ज्यवितो विरेजे ॥८

शिवराज—(निःश्वासा सेकर) हम नष्ट हो गये । (शोक से)
अरे, पापी शिद्दी, यह क्या बध ?

अपने सैनिकों की सहायता से एक अकेले इस राजवीर को मारकर
कीम-सा पराक्रम किया ?

प्रियवीर । अपने आपको समर्पित कर अपने स्वामी की रक्षा
करने वाले तुम्हारा धवल यश तीनों लोकों में विहर गया ॥७

मोह, मैं विस्तार से जानना चाहता हूँ ।

सैनिक—देव के प्रस्थानोपरान्त आर्यो घोर ने घेरे हुए दानु दस
को सप्ट-सप्ट करके, पचीस पावों के कारण शरीर में प्रवाहित रक्त
हाने उत भीर ने दुर्ग के प्रवेश द्वार की रक्षा की । उन्हीं समय यह

भीषण कृपाण सीके हुए बरालपाणि से दानु-सैनिकों के गिर को
काट, उनके बन्धनों से मांस भी प्लास कर यह समरवीर, सद्गुण
प्रवर्धित प्रपञ्च धनि की उवासा के समान प्रकान्ति हुआ ॥८

शिवराज :—(स्वगतम्) ग्रहो क्षत्रवीर एव लोकोत्तरविभ्रमेण स्वयाद्य रक्षितं धर्मराज्यम् ।

सैनिक —एव पराहते स्त्रिभुजे पापेन शिद्दीहृत्केन शतघ्नीगोल-
कविद्धः स देवस्य सुलोपस्थितिसूचकसतघ्नीस्वन एव दत्तावधानः
स्वामिचिन्तापरो भूमौ निपपात ।

शिवराज :—(सरोपम्) धाः पाप कूटाभियोगनिस्त्रपसुद्र,
अचिरेणैव त्वामशेष दुरितपक्षभागिनं करिष्यति शिवराज ।

सैनिक —ततश्च समाश्रय्य संकैतित शतघ्नीस्वनं—'ग्रहो सयज्ञः
स्वामिनियोगः । भगवति देहि मे शरणम्—इति सहसोवीर्यं स
प्राणानजहात् ।

शिवराज :—(निःश्वस्य) क्षत्रं कवीर, विरसा हि स्वाहशाः
स्वामिभक्ताः ।

शिवराज—(स्वयं) ग्रहो, क्षत्रवीर, इस प्रकार धनुष पराक्रम
से तुमने आज धर्मराज्य की रक्षा की ।

सैनिक—इस प्रकार शत्रुदल के हत होने पर पापी शिद्दी ने तोप
की गोली से उन पर घात कर दिया, तब यह देव की उपस्थिति-सूचक
तोप की ध्वनि की ही ओर ध्यान लगाये स्वामी की चिन्ता में ध्याकुल
भूमि पर गिर पड़े ।

शिवराज—(सक्रोध) ओह पापी, सुद्र, अपने शत्रु के साथ कूट
नीति का प्रयोग (धोखा) करते लज्जा नहीं भायो तुम्हे ? शीघ्र ही
शिवराज तुम्हें दस दुष्कृत्य का फलभागी बनायेगा ।

सैनिक—उसके बाद शतघ्नी का स्वर सुनकर—'ग्रहो स्वामी के
अनि कर्तव्य पूरा हुआ । भगवती मुझे शरण दो', कहते हुए प्राणों
को छोड़ दिया ।

शिवराज—(निःश्वास छोड़कर) धँष्ट क्षत्रियवीर, तुम्हारे समान
स्वामिभक्त विरले ही हैं ।

प्रारुणकर्मवशात् क्रमशो विकारान्,
सर्वेऽनुभूय ननु कालवशां प्रयागति ।
नून स एव निजदेश नरेशभक्तो ;
घन्योऽस्ति यस्य निधन उच्यते यशोभि ॥६

अधे दुर्गपाल भवतु राजोपचारेण मम वीरहृषान्त्यक्रिया ।
अद्यवाह तस्य राजभक्तस्य सप्तपुत्रान् ममाङ्गरक्षकपदे नियुञ्जे ।

चर --(प्रविश्य) विजयतां देव । सप्रति देव दुर्जयं मत्वा
परावृत्त ससंग्य सिद्धीहतक ।

शिवराज --भद्र त्व तावद्यवनेशमुपेत्यावेक्षस्व तस्य भावित्ति-
कीर्तितम् ।

चर --तथा । (इति निष्क्रान्त)

गूढचर --(प्रविश्य) विजयतां देव ।

सभी मनुष्य अपने भाग्य के अनुसार जगतः कर्म के वशीभूत,
धीर होकर मृत्यु को प्राण होते हैं । सरवत वह घन्य है जिसने अपने
देश और नरेश की सेवा में जीवन उत्सर्ग कर दिया, जिसकी मृत्यु
भी यश से प्रभावित होती है ॥६

दुर्गपाल, राजोपयुक्त ढग से मेरे वीर की धार्येष्टि क्रिया हो । मैं
आज ही उत राजभक्त के सातों पुत्रों को भगरक्षक के पद पर नियुक्त
करता हूँ ।

चर--(प्रवेशकर) विजय हो देव । देव सप्रति देव की दुर्जय
मानकर सेना-सहित सिद्धी पिर गया है ।

शिवराज--भद्र, तुम यवनराज के पास पहुँचकर उसकी भविष्य
की योजनाओं का ज्ञान प्राप्त करो ।

चर--जो भाशा । (निष्क्रान्त है)

गूढचर--(प्रवेशकर) देव, विजय हो ।

शिवराज —कप प्रवसति दिल्लीशतत्रम् ।

गूढचरः—देव महानस्ति तत्र विषर्षसिः ।

न्यायानुवर्तिनमसौ स्वगुण निगूह्य,
राज्याधिरोहणमवास्तद्विवेकतत्त्वः ।
प्राशङ्ग्य विश्वसितिनैव जिज्ञे परे वा ;
सबाधते प्रकृतिमात्तमहोप्रवण्डः ॥१०

संप्रति तदादेशानुरोधेनोद्यतो दक्षिणापयाधिपश्चाकणदुर्गोप-
रोधाय ।

शिवराजः—पुनरपि ज्ञायतां तस्य प्रवृत्तिः ।

गूढचरः—तथा । (इति निष्क्रान्त)

शिवराज —दुर्गपाल, प्रवर्त्यतामस्मच्छासनमाधिकृतेषु यदुपस्थिते
प्राणसकटे जनपद विहाय तद्दुर्गं सभाधमणीया महता प्रयत्नेन च ते

शिवराज—दिल्लीपति का प्रशासन किस प्रकार चल रहा है ।

- गूढचर—देव, बहुत परिवर्तन आ गया है ।

न्यायपथ का अनुसरण करने वाले अपने पिता को बन्दी बनाकर
राज्यसिंहासन पर आरोहण हो, राजमद से विवेकहीन होकर वह अपने
और पराये किसी भी व्यक्ति में विश्वास नहीं रखता एव अपनी
उद्दण्डता के कारण प्रजा को पीड़ित करता रहता है । १०

इस समय उसके आदेशानुसार दक्षिण प्रदेश का अधिपति चाकण
दुर्ग पर आक्रमण करने के लिए तैयार है ।

शिवराज—पुन उसकी प्रवृत्ति का ज्ञान करो ।

गूढचर—जो आज्ञा । (चला जाता है)

शिवराज—दुर्गपाल, हमारे शासनाधिकारियों को सूचित कर दो
कि वे प्राणसकट की स्थिति होने पर जनपद को छोड़ दुर्गों में आश्रय
ले लें और पूर्ण प्रयत्न के साथ उसकी रक्षा करें । और मंत्री को

रक्षणीया इति । तथा चाविद्यता मंत्री यद्वया नीसाधनेन स्वापत्तो
कर्तव्यो जंजीराद्वीप इति । तथैव सेनापतिनाप्यात्रमणीया अरक्षिता
मोगलप्रवेशा इति । अल्पीयसावालेनोपेत्यामो वय सिहगडदुर्गं तत्तत्रैव
श्रेयणीयानि निवेदनपत्राणीति ।

दुर्गपाल :—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्तः)

शिवराज :—मम वीराप्रसरेण परास्तमपि पुनरस्मान् परिधायेत
यवनसैन्यम् ।

अङ्गरक्षक :—देव, सनिहितो वर्षा समय । तदुपस्थितमपि
यवनसैन्यं स्वयमेव परावर्तिष्यते ।

शिवराज :—(परितो विसोक्य) एवमेतद् । यत एते
सुसितपयिकनेत्रे पुरधिरवा रजोभि-
यतनमपहरन्तो सुष्ठकाश्चक्रवाताः ।
जनपदपुरमार्गे संभ्रमन्तो ययैच्छुः
विषदभि घनभीता जल्पवन्ते समस्तान् ॥११

पादेन बरो कि मौजेना के महारे जरीरा द्वीप को अपने अधिकार मे
कर लें । उगी प्रकार अरधिन मुगलप्रदेशों पर सेनापति को आक्रमण
कर देना चाहिए । अत्यंतमय के पक्षान् ही हम सिहगडदुर्ग को
अरपान कर देगे, वही सारी सूचनाएं प्रेषित करे ।

दुर्गपाल—जंती आज्ञा देव । (बला जाता है)

शिवराज—वीराप्रणी घोर द्वारा परास्त होने पर भी यवन सेना
जुमे पुन. बल्ल पड़वा सक्ती है ।

अंगरक्षक—देव, वर्षाकाल निशुट है । इगनिए उनस्थित यवनसेना
स्वयं ही बाध हो जावगी ।

शिवराज—(बारों घोर देगकर) ठीक कहने हो । क्योंकि ये
धाम घोर नगरों के मार्ग मे बाधु का बकावर (तेज हवा) रवेन्द्रा
पूरुंर विचरए करका बाइमों के मउभीर-ना बारों घोर से उठकर
आकाश की घोर अरपान कर रहा है, घोर इस प्रकार ये बकावर
एक सुष्ठक के गपान धाम पविक की घाँवों में घुन भौंरकर उरके
बारों का अरपान कर रहे है ॥११

(उप्य विलोष्य) अहो गगनमध्यमावहकति भगवानहंपतिः ।
वत्साधयामः सभागृहं राजकार्याण्यदेक्षितुम् ।

(इति सपरिजनो निष्पद्यते)

समाप्तोऽयमात्मसमर्पणनामा

पञ्चमोऽङ्कः



(ऊपर देखकर) भगवान् सूर्ये गगन के मध्य में पहुँच रहे हैं ।
राजकार्यों के निरीक्षणार्थं समा-भवन में चलूँ ।

(सेवकों के साथ जाते हैं)

आत्मसमर्पण नामक

पाँचवाँ अर्थक समाप्त



पन्थोऽङ्कः

(सत प्रविशन्ति सिहगडदुर्गप्रसादावस्थिता मन्त्रिण)

नेताजी —(सहर्षम्) अभिनन्दते प्रधान मन्त्रिपदमधिहृद्
भाष्यमिथ ।

मन्त्री :—वीर महानैपोऽनुग्रह कृतयेद्विनो महाराजस्य । परन्तु
भोगप्रसक्तस्य महत्पदाप्ति—

भोगप्रसक्तस्य महत्पदाप्तिपथात्मतोषाय न मे तथेयम् ।

देवेन साक्षात् परिचारकर्मणि निपुक्त इत्येष मम प्रभोद ॥

नेताजी —पुण्यव्रतामेव सन्तु महत्सपर्वतीभाग्यम् ।

मन्त्री —अपि गृहीता धरक्षिता भोगलप्रदेशा ।

छठवाँ अंक

(उसके पश्चात् सिहगडदुर्ग में स्थित मन्त्रियों का प्रवेश)

नेताजी—(प्रसन्नता से) प्रधान मन्त्री पद पर आसीन होने के
सपत्न्य मे हम आपका स्वागत करते हैं ।

मन्त्री—वीर, यह तो आभारी महाराज की महती कृपा है ।
परन्तु

उच्च पद की प्राप्ति से जंता सन्तोष भोग आदि में लित व्यक्ति
के लिए होता है उस प्रकार का हर्ष और आत्म सन्तोष मेरे लिए
नहीं है, देव की साक्षात् सेवा करने का अवसर मिलेगा, वस यही
मुझे प्रसन्नता है ॥

नेताजी—महापुरुषों की सेवा का सौभाग्य पुण्यवानों को ही
मिलता है ।

मन्त्री—क्या धरक्षित भुगतप्रदेशों को अपिचार में किया ?

नेताजी —अथ किम् । ततश्च सगृहीतो सक्षत्रपरिमाणो राजा-
शोऽद्यैव मया कोशाध्यक्षाय समर्पितः ।

मन्त्री —दिष्ट्या प्रतिदिनमेघते महाराजस्य कोशदण्डज
प्रभावः ।

एसाजी —तथापि नास्ति वैवस्य विश्रामावसरः । एकतस्ताता-
देशमनुसृत्य बीजापुरेशेन सदधानस्य पुनरन्यत समुपस्थितो भोगलेशेन
सह विग्रहः ।

मन्त्री :—घोर, लोक सप्रहार्थमाविभूतानामीश्वराणां स्वभाव-
सिद्ध प्रवृत्तिप्रकृतं । पश्य

नित्य प्रकाशयति लोकमिम विद्यत्वा—
नाप्याययत्पुपचित सुधया मृगाङ्गुः ।
सप्तप्रहास्त्वविरत परितो भ्रमन्ति,
जानाति नैव विरतिं महतां प्रवृत्ति ॥२

नेताजी—हाँ । इसके अतिरिक्त लगभग तीन लाख की धनराशि
कर रूप में एकत्र करके आज ही मैंने कोशाध्यक्ष को दिया है ।

मन्त्री—भाग्य से महाराज का कोश घोर सैन्य बल प्रतिदिन
बढ़ रहा है ।

एसाजी—फिर भी देव को विश्राम का अवसर नहीं है । एक
घोर पिता के आदेशानुसार बीजापुर गरेस से सधि किया है, दूसरी
घोर मुगलसम्राट् से युद्ध करने की तैयारी कर रहे हैं ।

मन्त्री—घोर, ससार के हितार्थ जन्म लेने वाले महापुरुषों से
स्वाभाव से ही हमेसा विकासशील प्रवृत्ति होती है । देखो—

सूर्य सदा ही इस ससार को प्रकाशित करता रहता है, चन्द्रमा
अमृतवर्षों से जगत को सुख-शान्ति पट्टेबाठा है, सप्तप्रह बिना विश्राम
किये चारों घोर विषरते हैं, महान् पुरुषों की प्रवृत्ति ही विश्राम करने
वाली नहीं होती ।२

(नेपथ्ये) इत इतो देव । (आकर्ण्य) महो मंत्रं बोपसंपति
राजकार्यं व्याकुलो देव ।

(तत प्रविशति शिवराजः)

मन्त्रिणः—(उत्थाय) स्वागतं देवस्य ।

(सर्वे शिवराजमनूपविशन्ति)

शिवराज —पुनरपि प्रत्यासन्नो विग्रह ।

विरोधे विश्रान्ते प्रथमयज्ञनेशस्य परितो,
नबोऽयं सप्राप्तस्तदधिकबलविग्रहविधिः ।
पतन्त्येते नित्य किमितिभिरान्घा रिपुगणा ;
पतद्भस्वं प्राप्ता सभरसमुदाचिहुतवहे ॥३

मन्त्री—देव, समादृतोऽस्त्यचिरेण मशोडतेन भोग्लेशेन परंपरा-
गलराज्यशासनव्यतिथम । अनेन पुनरकाण्डोपनतो भविष्यति -
भोग्लसाम्राज्यविध्वंस । यतः

(नेपथ्य में) इधर, इधर न देव । (मुत्कर) महो, राजकार्य से
व्याकुल देव इधर (यहाँ ही) आ रहे हैं ।

(शिवराज का प्रवेश)

मन्त्रिण—(उठकर) देव का स्वागत है ।

(शिवराज के पदचान सभी बैठने हैं)

शिवराज—मन्त्रिण, फिर युद्ध सन्निकट है ।

शक्तिशाली बीजापुर नरेश और हमारा विरोध धारो धोर से
सर्वथा समाप्त हो चला, यह नया युद्ध उससे अधिक प्रबल मुगलसाम्राट्
से उपस्थित हो गया । ये हमारे शत्रु क्यों पतिंग के समान युद्ध स्पी
प्रज्वलित घग्नि में धग्ये होकर गिर रहे हैं ॥३

मन्त्री—देव, मुगलराज ने अभिमान स चूर होकर परम्परागत
शासन-व्यवस्था में शीघ्र हो परिवर्तन कर दिया है । इससे भवानक
मुगल-साम्राज्य का नाश हो जायगा । क्योंकि—

सत्योद्वेकाल्लसन्तोऽप्युदितनयगुणा न्यायमार्गप्रवृत्ता,
यान्मयुत्कर्षं नरेन्द्राः प्रकृतिहितपरा मण्डसं प्रीणयन्तः ।
अग्नये त्वेतद्विमोहाद् व्यसनपरवशा विद्वियन्तो मदारुणा ;
प्रत्यासन्नावसानाः प्रकृतिधिमृदिता आशु नाश व्रजन्ति ॥४

शिवराज :—सत्य प्रकृतिनिबन्धनं च राष्ट्रसमृद्धिः ।

द्वारपाल :—(प्रविश्य) विजयतां देव । दिल्लीनगरात् सम्प्राप्तः ।
कोऽपि यवनतापसो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराज :—प्रवेशयेन्मम् ।

द्वारपाल .—सया । (इति निष्क्रान्तः)

यवनतापस .—(प्रविश्य) विजयता महाराजः ।

शिवराज :—अस्ति काचित् सविशेषा प्रवृत्तिर्मोगलेशस्य ।

शक्तिसम्पन्न, राजनीति-कुशल, न्यायमार्ग पर चलने वाले राजा
तमी उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं जब वे अपनी प्रजा के हित का व्याव
और मण्डस को सन्नुष्ट रखते हैं । इसके प्रतिकूल वे राजा जो व्यसनो मे
पडकर मोहवश अभिमान के कारण उनसे द्रोह करते हैं, वे सदा नाश
के समीप रहते हैं । और प्रजा के विद्रोह से शीघ्र ही मण्ट हो
जाते हैं ।४

शिवराज—यह सत्य है—राष्ट्र की समृद्धि उसकी प्रजा पर
निर्भर होती है ।

द्वारपाल—(प्रवेश कर) विजय हो देव । दिल्ली नगर से कोई
यवनतापस्वी आकर द्वार पर स्थित है ।

शिवराज—उस ले आओ ।

द्वारपाल—जैसी आज्ञा । (निकल जाता है)

यवनतापस—(प्रवेश कर) महाराज की विजय हो ।

शिवराज—मुगलसम्राट् को किसी विशेष योजना का समाचार है ।

यवनतापसः—देव विपद्यस्त सर्वं भोगलेशतन्त्रम् ।

न मन्दते मन्त्रिकृतायंनिर्णय क्षत्रेश्वराणा कुस्तेऽवघोरणाम् ।
विद्वेष्टि सामन्तगण त्यकारण ; स्वच्छन्दचारेण चरत्यघोरश्वर ॥५

अतो राज्यसोभाकृष्टेनानेन सभताव् प्रवर्तितो रणोद्यम ।
अत्रान्तरे तस्य ध्वणपथमुपगतो वीजापुर सेनापतिवधोदन्तः ।
तदेतत्

ध्रुवा तव प्रसभमाक्रमण विपक्षे,
प्रस्तो ध्युदस्यति स भोगविलासलौल्यम् ।
आक्रोशति स्वजनमुद्विजते हतीजा,
आशङ्कतेऽभिपतन तव विवलयश्च ॥६

यवनतापस—देव, मुगल-सम्राट् की समस्त शासन नीति मे परिवर्तन हो गया है ।

मन्त्रियों द्वारा किया गया निर्णय नहीं माना जाता, क्षत्रिय राजाओं का अपमान किया जाता है, सामन्त सरदारों से अकारण ही विद्वेष रखता है, इस प्रकार सम्राट् स्वतन्त्र, अपनी इच्छानुसार आचरण करता है ॥५

इसलिए राज्य के लोभ से उन्होंने चारों ओर से युद्ध प्रारम्भ किया है । इसी बीच वीजापुर के सेनापति का वध समाचार उसे सुनायी पडा । अत

शत्रु पर आपके प्रबल आक्रमण का समाचार सुनकर, भयभीत हो वह भोग-विलास का लोभ छोड चुका है अपने ही पक्षियों को वह कायर होने के कारण कोसता है और हतबुद्धि होकर, आपके अचानक आक्रमण के भय से काँप रहा है ॥६

अतस्तेनाविष्टो दक्षिणापथाधिपो यत्कया कयमपि निगूह्यान्ना-
नेतव्यं स सह्यमूपक इति । तदाज्ञानुरोधेनपरिमितबलसमेत स
पुनानगरनधिष्ठापत्स्रदाक्रमरल्लमुपश्रव्यने । सप्रति च मपरिवार स
ननंकीभिववातिनो महाराजस्य प्रासाद एव निवसति ।

शिवराज —अन्यो युद्ध प्रवृत्तेष्वस्मात्स्थनेन घूर्सेन प्रघयिताऽ
स्मद्राजधानी । इदानीमय कामुक

देवाग्निविप्राचनमन्त्रपूत, पूर्व यदासीन्मम राजमन्दिरम् ।

करेणुकाभिवनदानगह्वर , करीय त मे मलिनो करोति ॥७

तदद्य त प्रदशविष्यानि मम नयपाटवम् ।

मन्त्री —देवसम्यक प्रयुक्ता अप्यस्मिन् कोशबलसमृद्धे कुण्ठी-
भविष्यति सानादयश्चत्शर उपाया । तत्पञ्चमोपायमन्तरेण नास्ति
क्षिण्यत्र प्रतिविधानम् । यत्

इस लिए उसने दक्षिण के राज्यपाल को आदेश दिया है कि वह
बिसौ प्रवार उस सह्य पर्वत के चूहे को पकड़कर लाये । उसकी आज्ञा
के अनुसार वह अपार सेना के साथ पूना नगर में बैठकर आक्रमण
करने की योजना बना रहा है । इस समय वह आपके महण में ही
अनन सबको के साथ नर्तकियों की बजा का आनन्द ले रहा है ।

शिवराज—हमारे अ यन युद्ध में ध्वस्त रहने के कारण इस घूर्त
ने हमारी राजधानी पर आक्रमण कर दिया । अब यह कामुक—

मेरे उस राज मन्दिर को जो बाह्यणो द्वारा उच्चारित वेदमन्त्रो
और देवाग्नि से पवित्र था, उस प्रकार दूषित कर रहा है जैसे सिंह
की माँ को हृदिनियों के साथ हाथी मलिन करना है ॥७

तो आज मैं उसको अपना नीति शौशल दिखाऊँगा ।

मन्त्री—देव, कोश और बल से समृद्ध शत्रु के सामने साम, दाम
आदि चारो उपाय भली भाँति प्रयोग करने पर भी व्यर्थ हो जायेंगे ।
इसलिए पञ्चम उपाय के अतिरिक्त अन्य कोई युक्ति नहीं है । क्योंकि



एकान्तेर्नवाप्रथमं बसाद्व्यं, दु सधाम घान्तिके वर्तमानम् ।
यत्नेनैव विद्विष्यन्त निगूह्य, स्वार्थान वै रसयेन्नीतिदक्ष ।८

अपि च सेनान्यधीर्नैव सर्वा समरप्रवृत्ति । यत

यानासने व्यूहविधानमाक्रम पराधरोप समराधतारम् ।

युद्धे प्रवृत्ति विरति तत पुनर्नेता स्वधीर्मानुगुण चिकीर्षति ॥९

तन्नेतृवधेन विरतो भविष्यति रणोद्यम परिश्रिताश्च भविष्य-
न्त्युभयत सैनिकाना प्राणाः ।

शिवराज —तदर्शवानुयात्रिकच्छदमना प्रविश्य पुनानगरभासा-
दधिष्ये भोगल सेनानायकम् ।

भीष्मद्रोणावय पूर्वं सेनान्य पाण्डुनन्दनं ।

द्वलेनैव हता युद्धे श्रीपतेरनुशासनात् ॥१०

नीति कुशल राजा को चाहिए कि वह संन्यबल से युक्त अनति-
क्रमणीय, जो सन्धि के योग्य न हो, समीप उपस्थित, शत्रु को अपनी
रक्षा करते हुए यत्र से वश में करे ।८

और भी, युद्ध की सारी क्रियाएँ सेनानायक के अधीन होती
हैं । क्योंकि

युद्ध के लिए प्रस्थान, व्यूहरचना आक्रमण, शत्रु को रोकना,
युद्धारम्भ, युद्ध में रत होना, अथवा उससे विमुख होना आदि समस्त
क्रियाएँ सेना नायक अपनी सन्ध शक्ति के अनुसार निर्दिष्ट करता है ।९

अतः नेता के वध से युद्ध की क्रियाएँ समाप्त हो जायेंगी और दोनों
पक्षों के सैनिकों के प्राणों की भी रक्षा होगी ।

शिवराज—तो आज ही वरदाना (वाराण) के सदस्य के रूप में
द्वल से पूना नगर में प्रवेश कर मुगल सेनापति को आश्रय दहूंगा ।

पूर्व समय में पाण्डवों द्वारा श्री कृष्ण के निर्देश से द्वल द्वारा ही
भीष्म, द्रोण आदि सेनापति मारे गये थे ।१०

(चर प्रति) भद्र उच्यते मद्रुषघनाद्यवनसेनानियुक्तो महाराष्ट्रियो गुल्माध्यक्षो यत्स्वयाच्छंथ विवाहयात्रायै संपादनोयं मोघलसेनापतेरनु-
शापत्रम् । तत्रच्छद्मवेशधरा ययं भविष्यामस्तेऽनुयात्रिका इति ।

यवनतापस :—यदाज्ञापयति देव । (इति निष्क्रान्त)

शिवराज .—अस्मिन् साहसोपक्रमे केवल पञ्चविंशतिसैनिकस-
भेतावमात्पदातिनायको भवतां मम यावन्नुवतिनो ।

उभौ—देव सज्जो हवः ।

शिवराज :—सेनापते त्वं तावत्संनाह्य दशधनोधिभागम् ।

नेताजी :—यदाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्त)

मन्त्री—अत्रावशिष्यते देवस्य प्रत्यागमनप्रार्थुह निवारणाय
कापि विशिष्टा प्रयुक्ति । तद् देवस्य परावृत्तिसमये गृहोत्सहेताः
कतिपय सैनिकाः प्रज्वालयन्तु 'कात्रजयदर्शनि समुन्नतपादपविटपात्रेभ्यु

(दूत से) भद्र, मेरे कथनानुसार यवनसेना मे नियुक्त मराठा
सेनापति से कहो कि आज ही मुगल-सेनापति से विवाह यात्रा के लिए
अनुमतिपत्र प्राप्त करें । उसमें छद्मवेशधारी हम लोग वाराती रहेंगे ।

यवनतापस—जो देव की आज्ञा । (चला जाता है)

शिवराज—इस साहसिक कार्य में केवल पचीस सैनिकों के साथ
अमात्य और पैदल सेना के अध्यक्ष मेरे साथ रहे ।

दोनो—हम लोग तैयार हैं देव ।

शिवराज—सेनापति, तोपखाना को तुरंत तैयार कर लो ।

नेताजी—जो आज्ञा देव । (निकल जाता है)

मन्त्री—देव के निर्विघ्न वापस आने के लिए कोई विशिष्ट मुक्ति
सोचनी शेष है । अतः देव के लौटने के समय सकेत पाकर, सैनिकों मे
से कुछ 'कात्रज' के मार्ग में वृक्ष की शाखाओं के अग्र भाग तथा बड़े-

महोत्सभृद्भेपु च निबद्धां स्तंलकपंटान् । घनेन भ्रान्ता मोगलसैनिकास्त-
श्रैवानुषावेष् ।

शिवराज :—अहो सुविभावितोऽय छलप्रबन्ध । एव भविष्यति
सर्वेषां पुनरत्र सुखोपस्थितिः । तद्भवता प्रयाणाभिमुखौ मे
प्रियसहायो । यावदहमम्बानामग्र्य प्रस्थान प्रबन्धो भवेयम् ।

समाप्तोऽयं छलप्रबन्धनामा

पद्योऽङ्कः



घटे बेलो की सींगो पर तेल और कपडो की ज्वालार्ण प्रज्वलित कर
खें । इससे मुगल सैनिक भ्रम में पडकर उधर ही दौडेंगे ।

शिवराज—अहो, यह कपट-पुक्ति अच्छी सोची गयी । इस प्रकार
सभी सुखपूर्वक महीं वापस आ जायेंगे । तो मेरे प्रिय सहायको प्रस्थान
के लिए तैयार हो जाओ । इस बीच मैं माता जी से मिलकर प्रस्थान-
हेतु तैयार हो जाता हूँ ।

छल प्रबन्ध नामक

छठवाँ अंक समाप्त



सप्तमोऽङ्कः

(सत प्रविशतो मोगलसेनामुखाप्यक्षी)

प्रथम — भद्र सेनाधिपती कोऽप्यमसाधारण सार्वभौमस्य पक्षपातो येनासौ स्वाभ्यधिकारानपि स्वय स्वप्तन्व्येषोपभुक्ते ।

द्वितीय :— अये किं न जानासि प्राग्वृत्तम् ।

प्रथम — स्वामिनियोगानुरोधेनाद्यैवाह गान्धारेभ्योऽत्र सप्राप्त ।

द्वितीय — तच्छृणु सावधान । पूर्वं दक्षिणपथाधिपत्ये स्थापितस्य सार्वभौममातुल्यस्य प्राप्ताद् गान्धकारावृताया रजन्या प्रच्छन्न प्रविश्य शिवराजेनोच्छिन्नास्तस्य भयद्रुतस्य कराङ्गल्यम् । अत्रान्तरे चाकर्ण्य तदाक्रोश साहाय्यार्थमुपागतस्नदात्मज शिवराज-

सातवाँ अंक

(उसके पश्चात् मुगलसेना के दो सेनापति आते हैं)

प्रथम—भद्र सेनापते, यह तो सम्राट् का बहुत बड़ा पक्षपात है कि (प्रमुख सेनापति) स्वामी के अधिकारों का भी स्वतंत्रता पूर्वक उपयोग कर रहा है ।

द्वितीय—अरे ! क्या पूर्वं वृत्तान्त नहीं जानते हो ?

प्रथम—स्वामी के आदेश से गान्धार गया था आज ही मैं यहाँ आया हूँ ।

प्रथम—फिर सावधान होकर सुनो । सबसे पहले दक्षिण प्रान्त के राज्यपाल, सम्राट् के मामा के महल में रात्रि के घोर अन्धकार में शिवाजी छिपकर घुस गये और भयभीत होकर भागते हुए इसकी धौंगुलियों को उसने काट लिया । उसके बाद चिल्लाना सुनकर सहायनार्थ आये हुए उसके पुत्र को शिवराज के अग्ररक्षक सैनिक ने

निष्ठस्य जयसिंहमहाराजस्य । (ऊर्ध्वं विलोक्य) अहो परिणतप्रायो हि
दिवस । यावत्साधयाम् स्वनियोगपरिपालनाय । (इति निष्क्रान्तौ)
इति विष्णुभक्तः

(तत प्रविशति जयसिंहसेनानिवेशमभिप्रस्थितः सपरिजन शिवराज)
जगन्नाथपन्तः—(परितो विलोक्य) देव पश्य,

ध्रुवा इमे तरुलतास्तबकं. सुगुप्ता,
निम्नोन्नता विकटशाद्वलशैलमार्गाः ।
आयाससाध्यकुटिलान्माक्रमपाटवे नः ,
शिक्षाविशेषमसम वितरन्ति साक्षान् ॥१

ध्रुवा इति—इमे तरुभिः वृक्षैः च लताभिः च स्तबकैः च सुगुप्ता
आच्छादिता निम्ना च उन्नता च विकटा दुर्गमा च शाद्वला
बालकृणावृत च तै शैलस्य गिरे मार्गा च आयासेन प्रयत्नेन साध्य
यः कुटिल आक्रम गमन कुटिलान्माक्रम अभियोगो वा तस्मिन्
विषये न अस्मभ्यननुपम शिक्षा विशेष साक्षान् वितरन्ति ।

जयसिंह के लिए कुछ भी असंभव नहीं है । (ऊपर देखकर) अहो,
दिन अब प्राय समाप्त हो रहा है । भत अब अपने कर्तव्य पालन का
प्रयास करें । (दोनों चले जाते हैं)

विष्णुभक्त समाप्त

(उसके पदचालत धपने सेवकों सहित शिवराज जयसिंह के सैन्य-
सिविर की ओर जाते दिखायी पड़ते हैं ।)

जगन्नाथपन्त—(चारों ओर देखकर) देव इधर देखिए,
पर्वत के ये ऊँचे नीचे दुर्गम मार्ग जो वृक्षों, लताओं, कुजी ओर
धासों से ढके रहते हैं प्रयत्न करने पर साध्य हो जाते हैं, इससे हमें
शिक्षा प्राप्त होती है कि उपाय द्वारा दुर्गम रास्तों को लौढ़ा तथा
कुटिल शत्रुओं को जीता जा सकता है ॥१

शिवराज :—सत्य शैलोद्देशसक्रमणपाटवेऽतिवर्तन्ते मोगससैनिका-
नसम्सैनिकगणा । येनाल्पबला अपि यय प्रबलपरिपन्थिना पुरतो
धर्मराज्यसंस्थापनयशोभागिन सवृत्ता ।

जगन्नाथपन्त—एवमेतत् । अपि च

उच्चावचात्तलभुवो गिरिगह्वराणि,
नानासतातस्वरश्चितकाननानि ।
उत्तुङ्गशैलशिखरमुत निर्भरानि ,
दुर्गात्मना तव परस्य च सस्थितानि ॥२

शिवराज—एतद्दुर्गं प्रवरं रेवाद्यावधि रक्षितमस्मत्स्यातन्मयम् ।

उच्चावचेति—उच्चावचा च या मन्तलस्य गिरे भुव , गिरयश्च
गह्वराणि गुहाश्च, नानालताभि तस्वरं, च अश्चितानि ललितानि च
तानि वाननानि वनानि च, उत्तुङ्गशैल शिखरेभ्य सुतानि च तानि
निर्भरानि प्रवाहाश्च, एतानि सर्वाणि तव दुर्गात्मना दुर्गरूपेण परस्य
च दुर्गात्मना अन्तरायरूपेण स्थितानि ।

शिवराज—सत्य है हमारे सैनिक पर्वतीय मार्ग पर चलने में
मुगससैनिकों से श्रेष्ठ हैं । वही कारण है जो हम अल्पशक्ति से भी
प्रबल शत्रु के सामने धर्मराज्य की स्थापना में समय हो रहे हैं ।

जगन्नाथपन्त—ऐसा ही है । और भी,

पर्वत की ऊँची, नीची धरती, पर्वत की गुफाएँ, नाना प्रकार की
सताओं और वृक्षों से सुशोभित वन, पर्वत के उच्च शिखर से प्रवाहित
होने वाले निर्भर, वे सभी आपके लिए मुहक दुर्ग के रूप में और शत्रु
के लिए बाधा स्वरूप स्थित हैं ॥२

शिवराज—इन्हीं श्रेष्ठ दुर्गों से आज तक हमारी स्वतंत्रता की
रक्षा होती रही । परन्तु भाग्य के परिवर्तन से हम उन्हें छो देने के लिए

परंतु कालमहिम्ना संप्रति तानेयाहुतीकर्तुं यद्य प्रयुक्ता । तथाप्यनुश्ले
ष्ये पुनस्त एव भविष्यन्त्यस्मत्स्वातन्त्र्य सहाया ।

जगन्नाथपन्त — तत्र क सदेह । सर्वत्रय सान्तरायोऽस्ति प्रकृष्ट
कलाधिगम । परंतु कर्तव्यनिष्ठाया अविच्युताना भवन्ति सर्वेऽपि
परिणामसुखोदया उपक्रमा ।

शिवराज — भद्र, अथ विषददूर धर्तते भोगलसेनानिवेशः ।

जगन्नाथपन्त — देव, पश्यंतेऽस्मत्तुरंगमा ,

सक्रम्य गुप्तान् विषमाद्रिमागानुत्तोर्यं विस्तोर्यं जलप्रवाहान् ।

प्रवातवेगेन समुत्पन्नत , प्राप्ता क्षणेनोच्छ्रितशैलवप्रम् ॥३ —

शिवराजः—उपागता यद्य तावत् पुरन्दर परिसरप्रदेशम् । (दूरं
विलोक्य सविस्मयम् अहो किं नामतत्) पश्य,

प्रस्तुत हो गये है । फिर भी भाग्य के अनुकूल होने पर पुन ये हमारे
लिए स्वतंत्रता प्राप्त करने में सहायक होंगे ।

जगन्नाथपन्त—उसमें क्या सन्देह ! उत्कृष्ट लक्ष्य की पूर्ति में
सर्वत्र बाधाएँ होती ही हैं । परन्तु कर्तव्यनिष्ठा से न हटनेवाले के
लिए सभी प्रयास सुखदायक परिणाम वाले होते हैं ।

शिवराज—भद्र, अब मुगल सेना का शिविर किननी दूर है ।

जगन्नाथपन्त—देव, हमारे इन घोड़ों को देखिए,

पर्वत के विषम और गुप्त मार्गों को पारकर, बड़े-बड़े जलप्रवाहों
(नदियों को) लाँघकर, वायु की गति में उड़ते हुए क्षण मात्र में,
उच्च पर्वत पर पहुँच गये । ३

शिवराज—तब हमलोग पुरन्दर के निकट प्रदेश में आ गये ।
(दूर देखकर, आश्चर्य से) अहो, यह क्या है । देखो,

प्राच्याद्येवोष्णरश्मि निजघनततिभिर्ध्वान्तमापादयद्भिः—
 हृन्मर्मोद्भूदिनादे. स्तनितपटहर्जग्वंभाघोषयद्भिः ।
 धारासपातभान् प्रतिभटयिटपिष्वाकुलोपत्यकान्त
 प्राक्रान्तो म्लेच्छसंभ्यैजलधरनिवहै दुर्गराजः समन्तात् ॥४
 जगन्नाथपन्त —देव, अवरुद्ध इव लक्ष्यते पुरन्दरदुर्गो भोगलसैनिकैः ।

प्राच्याद्येति—निजघनततिभिर्ध्वान्तमापादयद्भिः सूयं पक्षे दुर्गपाल मुरार-
 वाजीवीरमाच्याद्येव ध्वान्तमन्धकारमापादयद्भिः कुर्वद्भिः स्तनितानि
 एव पटहा तेन्य जातं पक्षे स्तनितानि इव पटहा तेन्य जातं: हृद.
 हृदयस्य मर्मोद्भिः भिन्दन्ति तादृशं नादं गर्वमाघोषयद्भिः धारासपातैः
 आसारं पक्षे प्रतिधारासपातं भन्ता य प्रतिभटा एव विटपिन वृक्षा
 सं. व्याकुल इव उपत्यकान्त उपत्यकाप्रदेश यस्य स दुर्गराजः
 पुरन्दरदुर्ग म्लेच्छसंभ्यैः जलधरनिवहै. पक्षे जलधरनिवहैरुपै.
 म्लेच्छसंभ्यैः समन्तात् आश्रान्त ।

शिवराज—अरे किमिद द्वेषप्रयणत्व ययनसेनापतेः । यदेकतः
सघानतत्रमुपन्यस्यान्यतोऽतो विप्रहमनुजानाति ।

जगन्नाथपन्त—देव कथं नु सभाष्यत एतत्क्षत्रप्रवीरस्य जयसिंहस्य ।
किरवधोरित सेनापति निदेशस्य मोगलपदातिनायकस्य स्यादेतदनायं
चेष्टितम् । पत ,

राजां प्रिया यद्गुमता व्यसने सहाया,
विलम्बभूमय इमे परिपाश्र्वंगाश्च ।
संतर्ज्यं शासनमपि स्वपतेमदाग्धा,
क्षुद्रा अरण्यवृष्यद्विचरन्त्यतन्त्रा ॥५

शिवराज—(अश्ववेग निरुध्य) एष कोऽपि क्षत्रियसादी सवेगमित
एषाभिवर्तते ।

शिवराज—अरे, ययनसेनापति की दुरगरी नीति कौसी ? कि एक
धोर से सन्धि करने का प्रस्ताव रखता है और दूसरी धोर से वह
युद्ध के उपक्रम करता है ।

जगन्नाथपन्त—देव, क्या यह क्षत्रियवीर जयसिंह की नीति नहीं
हो सकती । किन्तु सेनापति के निदेश के विपरित कदाचिन मुगलों की
पैदलसेना के नायक ने यह अनुचित प्रयास किया हा । क्योंकि,

ऐसे क्षुद्र जन, जो राजा के प्रिय होते हैं, उनके द्वारा विशेष आदर
पाते हैं, उनके व्यसनों में सहायक रहते हैं, उनके विश्वासपात्र और
और साथ रहनेवाले होते हैं, अपने स्वामी के शासन की भी भवहेलना
कर, मशान्ध-सा होकर कार्य करते हैं, जैसे जगली बिल स्वच्छन्द होकर
विचरण करता है ।५

शिवराज—(घोड़े के वेग का अनुमानकर) यह कोई क्षत्रिय
धुड़सवार तेजी से यहाँ आ रहा है ।

(तत प्रविशति क्षत्रियसादो)

सादी—(सप्तभ्रमम्) देव, महदश्याहितम् । मोगलपदातिनायके
नोपजापितोऽपि स्वामिचरणयोरात्मन परां निष्ठा प्रकटयन् शतशो
भोगलसैनिकानिहत्य वीरगतिं प्रपन्न पुरन्दरदुर्गपाल ।

शिवराज—हा कष्टम् । उपक्रान्तमिध लक्ष्यते दुर्देवविचेष्टितम् ।

सादी—तस्य चालोकसाधारणविक्रमविस्मिधतेन मोगलनायकेन
सदानो सहसंबोदीरित—'विश्वपतिरेवतादृशान्वीरभट्टानुपादयितुं
प्रभवति—'इति ।

शिवराज—अहो, पराभिनन्दितविक्रमस्य नाशचतोऽनन्तलोकजय ।
अये गच्छ त्व पुनरपि पुरन्दरदुर्गम् ।

सादी—यथाज्ञापयति देव । (इति निष्क्रान्त)

(उसके बाद क्षत्रिय भस्वारोही का प्रवेश)

भस्वारोही—(धवडाय हुभा) देव, घोर आपत्ति । मुगलों की
पैदलसेना के नायक से मिल करने पर भी, पुरन्दर दुर्ग का पालक,
स्वामी के चरणों में परमनिष्ठावान् रहकर सैकड़ों मुगल सैनिकों का
वध करके वीरगति को प्राप्त हो गया ।

शिवराज—दुःख है । मात्रम होता है दुभाग्य न कार्यं भारम्भ
कर दिया ।

भस्वारोही—और उसके भसाधारण वीरता से आश्चर्य में पड़कर
मुगलसेनापति ने उस समय अमानक कहा—'ईश्वर ही ऐसे वीर पैदाकर
सकता है ।'

शिवराज—अहो, दाम्नु द्वारा जिसकी वीरता की प्रशंसा की गयी
विश्वत ही वह सत्कार विजयी बना । अर्थात् तुम अब पुरन्दर दुर्ग
आओ ।

भस्वारोही—जैसी आज्ञा देव । (चला जाता है)

शिवराज — भद्र, नास्त्यप्रावृत्तानो विसम्बस्य । (इति सर्वेऽ-
श्वानोदयन्ति)

(ततः प्रविशत्यपटीसौपेणाश्वान्द उदयसिंहः)

उदयसिंह — सहो देवर, तिष्ठ तावन्मुहूर्तम् ।

शिवराज — (अश्वनिगृह्य) अहो उदयसिंह । अयनाभयं
महाराजस्य

उदयसिंह — अयकम् । अपि च तद्विष्टमस्ति देवेन मद्रुमदादेशा-
नुवर्तननिष्ठापुरस्सरं यदि तथागमन स्यात्तदा सुखेनागन्तव्यम् ।
अन्यथा त्वित एव विनिवर्तनीयम् — इति ।

शिवराज — सर्वथा मान्य एवास्माकं क्षत्रकुलनायकस्यादेश ।
तस्मत्वरमुपेभो महाराजस्य शिविरम् । (सर्वेऽश्वानोदयन्ति) —

शिवराज — भद्र, अथ देर करने के लिए समय नहीं है । (सभी
घोड़ों को हाँकते हैं) ।

(तभी अचानक परदा हटाकर घोड़े पर सवार उदयसिंह का प्रवेश)

उदयसिंह — महाराज, क्षणभर के लिए रुकें ।

शिवराज — (घोड़े को मोड़कर) अहो, उदयसिंह । महाराज कुशल
है न ?

उदयसिंह — जी हाँ । परन्तु यह निर्देश किया है कि आप यदि
उनके आदेश का पालन करें तो प्रसन्नापूर्वक मिल सकते हैं अन्यथा
यही से लौट जायें ।

शिवराज — क्षत्रिकुलनायक का आदेश हमारे लिए सर्वथा मान्य
है । इस लिए महाराज के शिविर की ओर चल । (सभी घोड़ों को
हाँकते हैं ।)

उदर्यासिह —सह्येश्वर, प्रायासन्नोऽस्मत्सेनानिवेश । तदश्या-
बवरुह्य प्रविशाम । (इति सर्वेश्वरोहृगिति)

(पटौक्षेप.)

(ततः प्रविशत्युपकार्यावस्थितः सपरिवारो जयसिंहो रघुनाथपन्तश्च)

रघुनाथपन्त —(दूर वितोषय) एष उपस्थितोऽस्मत्स्वामी
शिवराजः । यावत्तं प्रत्युद्गच्छामि । (इत्युपसर्प्य) स्वागत देवस्य ।
(इत्यभिनन्दति) प्रविशतु देवः सपरिवारो महाराजोपकार्याम् ।
(इति सपरिवारं शिवराज प्रवेशयति)

जयसिंह —(अभ्युत्थाय) स्वागत सह्येश्वरस्य । (इति हस्तयो-
गुहीत्वा) ममैवाधर्षितनमधिष्ठातुमर्हति सह्येश्वर । (इति स्वपादर्थे
शिवराजमुवेशयति)

शिवराज —महानेवोऽनुग्रह क्षत्रकुलमण्डनस्य ।

उदर्यासिह—सह्येश्वर, हमारा सैन्य-शिविर निकट है । इसलिए
घोड़े से उतरकर चलें । (सभी घोड़े से उतरते हैं)

(परदा गिरता है)

(उसके बाद अपने सेवकों और रघुनाथपन्त के सहित जयसिंह
राज-शिविर में बैठे दिखायी पड़ते हैं)

रघुनाथपन्त—(दूर देखकर) हमारे स्वामी शिवराज यह भा रहे
हैं । चलकर उनका स्वागत करूँ । (पट्टीचकर) स्वागत है देव । (प्रणाम
करता है) सेवकों-सहित महाराज के शिविर में प्रवेश करें । (सेवकों-
सहित शिवराज को ले जाता है ।)

जयसिंह—(उठकर) सह्येश्वर का स्वागत है । (हाथों से पनडकर)
आइए मेरे अधर्षितन पर बैठिए सह्येश्वर । (शिवराज को अपने बगल
बैठाना है ।)

शिवराज—शत्रियपुत्र भूषण का यह महान् अनुग्रह है ।

जयसिंह—अप्यनामय क्षत्रप्रवीरस्य ।

शिवराज—राजन् संघानप्रवणेऽपि मयि कथं क्षत्रपरिमदान्नि
विरमात्येव पदातिनायकः ।

जयसिंह :—सर्वं भूमस्य बहुमानेनावलितोऽयं स्वया स्वयमेवोपेत्यः
साल्त्वयितभ्यः । एष प्रवीरतरो मम वितृष्यः सुभानसिंहो भविष्यति
तव सहायः । तन्माऽभूत्लेखतोऽप्यत्र तवानिष्टदाडूद्विषासः । सप्रति
प्रेषयाम्यहमुदयसिंहं युद्धविष्टम्भाय ।

शिवराज .—राजन्, स्वद्वारासत्यपरिगृह्यंतोऽहं सर्वंया प्रतिपद्ये तव
हितोपवेशम् ।

जयसिंह :—पूर्वं तावद्विधीयतां स्वनाममुद्राङ्कितमेतत्सविषयम् ।
(इत्यप्यवति)

शिवराज .—(पाचयति)

जयसिंह—क्षत्रियवीर का कुशल है न ?

शिवराज—राजन्, यह पंडित सेना का नायक क्षत्रियो के मर्दव से
विधाम क्यों नहीं लेता जबकि मैं शान्ति रखना चाहता हूँ ।

जयसिंह—सम्राट् द्वारा विशेष आदर पाने के कारण यह उद्वेग
हो गया है तुम स्वयं उसके पास जाकर शान्त करो । वीरश्रेष्ठ मेरे
आचा ये सुभान सिंह तुम्हारे सहायक रहेंगे । भतः अपने अनिष्ट की
तविक भी सका न करें । सप्रति उदयसिंह को युद्ध रोकने के लिए
भेजता हूँ ।

शिवराज—राजन्, तुम्हारे स्नेह से अनुगृहीत तुम्हारी सलाह
सर्वंया मानता हूँ ।

जयसिंह—पहले इस सन्धि पत्र को अपने हस्ताक्षर और मुद्रा से
पूर्ण करो (देता है ।)

शिवराज—(पढता है)

श्रीमद्भारतराजकुलाधोद्वरसार्वभौममोगलेशचरणरक्षिताञ्जलिः
शिवराज

१. स्वकीयांघ्रयोविंशति दुर्गाश्चत्वारिंशल्लक्षाशवहाश्च जनपदान्
सार्वभौमस्य स्वाधीनाभाषयति । स्वयं चावशिष्टान् द्वादशदुर्गाश्च-
तुर्लक्षाशवहांश्च जनपदान् सार्वभौमशासनमनुरूप्यमुशास्ति ।

२ स्वकुमारं च सार्वभौमसेनाया पञ्चसहस्रसादिनामधिकारपदे
स्थापयति ।

३ स्वयं च सार्वभौगुधूपायां सवेदा सादरो वसते ।

४. स्वयं च सनिहितराज्ययोश्चतुर्षांशसप्रहाधिकारं सार्वभौम-
स्योपभुक्ति ।

(इति । स्वनाममृदाङ्कितविधाय) उररोत्रियते मयंतसधिपत्रम् ।
(इत्यप्यंयति)

भारतवर्ष के राजकुलों के सम्राट् सार्वभौम सम्राट् मुगलेश
के चरणों में शिवराज करबद्ध प्रणाम करते हुए ।

१ अपने तेईस दुर्गों और बालीस लाख के अठार घाले जनपदों
को सार्वभौम सम्राट् के अधीन करता है । और स्वयं शेष बारह दुर्गों
तथा चार लाख की सम्पत्ति वाले जनपदों पर सम्राट् के अधीन रहकर
शासन करता है ।

२ अपने कुमार को सम्राट् की सेना में पाँच हजार अस्वारोहियों
के अधिकार पद पर नियुक्त करता है ।

३ और स्वयं सार्वभौम की सेवा के लिए मुदा संयार है ।

४ और स्वयं सार्वभौम की आज्ञा से दो पड़ोसी राज्यों से
चतुर्षांश छंदह का अधिकार रखता है । (हम्नाशक्ति और मुदाङ्कित
करने) इस अधिपत्र की दत्ते स्वीकार करना है ।

जयसिंह —सहोदर परं प्रीणयति मां तव सौजन्यातिशयेन ।
उदयसिंह, उच्यते मद्रचनात्पदातिनायको यद्युद्धव्यवसायतस्त्वंसद्यो-
विरमेति ।

उदयसिंह —यथाज्ञापयति देव । (इति निष्क्रान्त)

प्रतिहार —(प्रविश्य) विजयना देव । एष सार्वभौमस्य सवेशहर
कोऽपि इतो द्वारितिष्ठति ।

जयसिंह —प्रवेशयन्म् ।

प्रतिहार —पदाज्ञापयति देव) (इति निष्क्रान्त)

दूत —(प्रविश्य) विजयता महाराज ।

जयसिंह —अप्यनामय सार्वभौमस्य ।

दूत —अयं किम् । प्रेषितमेतद्वाजशासन महाहं वस्त्राभूषणपुर-
सरं सार्वभौमेण शरणमुपागते शिवराजे वितरितुम् । (इति राज-
शासनादीन्वपयति)

जयसिंह—सहोदर, तुम्हारी सौजन्यता से हम अत्यन्त सन्तुष्ट
हैं । उदयसिंह, मेरे आदेशानुसार पैदल सेना के नायक को युद्ध सम्बन्धी
सभी कार्य बन्द करने के लिए कहो ।

उदयसिंह—जैसी आज्ञा देव । (चला जाता है)

प्रतिहार—(प्रवेशकर) विजय हो देव । सार्वभौम का सन्देशवाहक
कोई दूर द्वार पर उपस्थित है ।

जयसिंह—ले भागो उसे ।

प्रतिहार—जो आज्ञा देव । (चला जाता है)

दूत—(प्रवेशकर) विजय हो महाराज ।

जयसिंह—सार्वभौम कुशल है न ?

दूत—जी हाँ । सार्वभौम ने बहुमूल्य वस्त्राभूषण शरणाग्न शिव-
राज को देने के लिए यह राजाज्ञा भेजी है । (राजाज्ञा आदि देता है)

जयसिंह :—(सविस्मय स्वगतम्) ग्रहो भवितव्यता । (धाच-
यित्वा) सह्येश्वर, दिग्ध्याऽनवसोक्षितमध्यभिन्नच्छते संघिपत्र सार्व-
भौमेण बहुमग्यते च त्व महाहोषचारः ।

शिवराज :—राजनीतिदक्षे महाराजे मन्त्रिसेनापतिपदाधिहडे
सह्येष्वमेणार्थसिद्धि सार्वभौमस्य ।

जयसिंह :—क कोऽत्र भो ।

प्रतीहार —(प्रविश्य) आज्ञापयतु देव ।

जयसिंह —आराधयन्तु सगीतेन सह्येश्वर नर्तक्यो यावदहमेनं
समावयामि महाहोषचारं ।

प्रतीहार —तथा । (इति निष्क्रान्तः)

जयसिंह —वत्स शिवराज उत्तिष्ठ । (इति वज्रादीनि परि-
षापयति)

नर्तक्य :—(प्रविश्य) विजयता महाराज । (इति सगीतमारभन्ते)

जयसिंह—(आश्चर्यं मे पडकर स्वयं) ग्रहो, भाग्य ! (पडकर)
सह्येश्वर, भाग्य से बिना देते ही सार्वभौम ने सन्धिपत्र स्वीकार कर
लिया और बहुमूल्य उपहारों से तुमको भादर दिया है ।

शिवराज—राजनीति में कुशल महाराज वे मन्त्री और मेनापति
पद पर नियुक्त रहने से सार्वभौम क्रमानुसार हर कार्य में सफल होते हैं ।

जयसिंह—कौन, कोई है ?

प्रतिहार—(प्रवेशकर) आज्ञा देव !

जयसिंह—सह्येश्वर, वा नर्तकियों के मंगीत से मनोरञ्जन करायें,
मैं राजकीय उपहार प्रदान करता हूँ ।

प्रतिहार—ठीक है : (घना जाता है)

जयसिंह—वत्स, शिवराज उठो । (बन्ध आदि पहिनाता है ।)

नर्तक्यी—(प्रवेशकर) विजय हो महाराज । (मंगीत शरम्भ
करती है)

(विहागरागेण तेवरातालेन गीयते)

सुभनसुकुमार नयनविहार ॥

हृदयधार यौवनसार । प्रणयापार पारावार ॥ सुम० ॥ १

जलदश्यामघर सुखधाम । कुसुमललामचम्पकदाम ॥ सुम० ॥ २

अयि भुवनेश मानववेश । रमय रमेश मां रसिकेश ॥ सुम० ॥ ३

जयसिंह :—अनया चम्पकमालया सुवर्द्धं भवतु ते हृदयं मोगल-
साम्राज्येन । (इति मालामर्षयति)

शिवराज —राजन् भवाद्दर्शंभारतवीराक्षरं: क्षुण्ण एव पन्था
अस्माकं परम शरणम् ।

जयसिंह :—अल्पोयसा कालेन नून भविष्यति तव सार्वभौमसमा
गमसांभाग्यम् । तत्र च कश्चिद्यति समात्मजो रामसिंहस्तवसाहाय्यम् ।
तदानीं तवालोकताधारणविक्रमपरिनुष्टो मागलेशो नियोजयिष्यति
त्वां दक्षिणापथाधिपत्ये ।

(विहागराग तेवराताल से गाया जाता है)

हे, कुसुम सुकुमार, आँखों को सुख देने वाले हृदय के आधार-
यौवेन के सर्वस्व, प्रेम के समुद्र । १ बादल के समान श्याम वर्ण वाले,
सुखधाम, चम्पक पुष्पों की यह सुन्दर माला । २ मनुष्य रूपधारी हे
भुवनेश धारण करो प्रीति है रसिकों में श्रेष्ठ रमेश (भगवन्) मुझे
साथ में विहार का सुख दो ॥ ३

जयसिंह—इस चम्पकमाला की सहायता से तुम्हारा हृदय मुगल
साम्राज्य से भावद्ध हो जाय । (माला पहिनाता है)

शिवराज—राजन् आप सदृश भारतवर्ष के वीराक्षी द्वारा
अपनाया मार्ग ही हमारे लिए शरण है ।

जयसिंह—कुछ ही समय में तुमको सार्वभौम के समागम का
सौभाग्य निश्चित रूप से प्राप्त होगा । वहाँ मेरा पुत्र रामसिंह तुम्हारा
सहायक होगा । तब तुम्हारे असाधारण विक्रम से सन्नुष्ट मुगल सम्राट्
तुम्हें दक्षिण प्रदेश का राज्यपाल नियुक्त करेगा ।

शिवराज — महाराजस्य वचति वतं मानस्य ममोत्तरोत्तरमूर्खत्वं
पुत्र ।

जयसिंह — क्षत्रप्रवीर, स्वावृशानां विक्रमशासिना साहाय्येन
समीहते सार्वभौम साम्राज्यप्रभावम् समेषमितुम् ।

शिवराज — भवावृशं क्षत्रेश्वरं समृद्धे साम्राज्ये का गणना
मम साहाय्यस्य । किंतु महाराजस्य प्रसादात् सार्वभौमसपर्याप्रसङ्गोद-
येनात्मानमहं कृतिनं मन्ये ।

जयसिंह :—(ऊर्ध्वं विलोच्य) ग्रहो, उपक्रान्तो निशीथसमय ।
कः कौश्य भो ।

प्रतिहार — (प्रविश्य) धाजापयतु देव ।

जयसिंह — अन्तर्गृहमाणमादेशय (शिवराज प्रति) एहि सह्येश्वर ।

प्रतिहार :— इत इतो देव । (सर्वे परिणामन्ति)

शिवराज—महाराज की सलाह मे रहने पर मेरा उत्तरोत्तर
सत्त्वपं ही होगा ।

जयसिंह—क्षत्रियवीर, तुम सद्गुण पराक्रमी की सहायता से सार्व-
भौम साम्राज्य का प्रभाव बढ़ाना चाहते हैं ।

शिवराज—आप सद्गुण क्षत्रिय श्रेष्ठ द्वारा समृद्ध साम्राज्य मे मेरे
साहाय्य की कौन गिनती है । किन्तु महाराज की कृपा से सार्वभौम की
सेवा का अवसर प्राप्त करने में स्वयं को भाग्यशाली मानना है ।

जयसिंह—(ऊपर देखकर) ग्रहो, रात्रि काल ध्यनीत हो रहा है ।
कौन है ।

प्रतिहार—(प्रवेशकर) धाजा देव ।

जयसिंह—अन्तर्गृह का मार्ग दिखाओ । (शिवराज से) धायो
शमोेश्वर ।

प्रतिहार—इपर-इपर से देव । (सभी धूमकर चलते हैं)

शिवराज :—(स्वगतम्) महो कथमद्यापि साक्षाद्भवेव धर्म
मनो भोगसाधोश्चरे । यद्

आजन्मनां जनमिमं द्विषताऽधमेन, साम्राज्यवंभवमदोद्धतमानसेन
स्वातन्त्र्यमन्यनूपतेरसहिष्णुनामे, संमाननं किमु कृत प्रविलोभनार्थम्

प्रतिहार :—एतदन्तर्गुह्यं द्वार प्रविशतु देवः सह्येश्वरश्च । (
निष्क्रान्तः)

जयतिहः—(प्रविश्य सुवर्णमञ्चाधिष्ठित्वा) क्षत्रधीर तव सामं
धारप्रयणतयाऽतीव सन्तुष्टोऽस्मि ।

शिवराज :—राजन्, मस्थानेऽपि शाङ्काकुलं मे मनो मा मुत्तरप
यस्त्वयमलोक साधारण विक्रमा साक्षाद्विजयभूर्तयो भवादृशा म
सानन्दमङ्गीकुर्वन्ति भोगसेशानुपत्यम् ।

शिवराज—(स्वयं) महो, क्या कारण है कि आज भी मेरा हृद-
मुगल सम्राट् से शक्ति हो है । जैसे,

वह जो अथम जन्म से मेरा शत्रु है, जिसका हृदय साम्राज्य के
संभव से उन्मत्त है और जो अन्य राजाओं की स्वतन्त्रता सहन नहीं
करता, उसने मेरा इस प्रकार सम्मान क्यों किया, केवल सातथ दिलाने
के लिये । ६

प्रतिहार—यह अन्तर्गुह का द्वार है, देव और सह्येश्वर प्रवेश
कर । (बला जाता है)

जयतिह—(प्रवेशकर, स्वर्णमंच पर बैठकर) क्षत्रियधीर तुम्हारे
इस समर्थप्रहार से मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ ।

शिवराज—राजन् धनारण यह क्यों मेरा मन शक्ति होकर
जानना चाहता है कि अद्वितीय पराजमगाली, साक्षात् विजय की भूक्ति
सद्गुण आप भी मुगल सम्राट् की सेवा सानन्द स्वीकार कर रहे हैं ।

जयसिंह—वरस कालचक्रपरवशा हि सर्वे प्राणिन । सप्रति
होनगुणानां क्षत्राधिपाना गुणोत्कर्षेणाह्वयप्रतापस्य मोघसान्वयस्य
सपर्यामन्तरेण न विद्यतेज्ज्वदालम्बनम् । तथावदेत न भवन्त्यन्तराया
अस्मद्धमनिष्ठानेषु तावत्समाननीयाः । तथापि साप्रतं सम्राट्पद-
माख्येन मोगलेशेभ परधर्मविद्वेष परलोप्तमेव साम्राज्यविध्वयोजम् ।
अहो वत यद्भावि तस्केन निवायंते । पूर्वं सम्राडनुग्रहपरंपरावशीकृत-
रस्माभिस्तु कृतगतपाऽनुष्ठीयते भूत्यधर्मः :

शिवराज :—राजन्, अन्यथा खलु मे प्रत्यय । यतः

स्वामिनं तु निजधर्मविच्युत, सेवक परिहरन्त दोषभाक् ।

अप्रज हि परदारलोलुपं व्यावृणुत् गुणनिधिधिभीषण ॥७

जयसिंह—अहो, क्षत्रवीर एवं धर्मतरवह्यापनेन श्यामोदयसीध

जयसिंह—वरस, सभी प्राणी कालचक्र के अधीन हैं । सप्रति गुण
हीन हुए क्षत्रिय नरेशों के लिए, गुणोत्कर्ष के कारण प्रतापशाली हो
गये मुगलों की सेवा के अतिरिक्त अन्य कोई सहारा नहीं है । अतः
जब तक कि ये हमारे धर्मनिष्ठान में हस्तक्षेप नहीं करते, समान्य हैं ।
फिर भी मुगल सम्राट् ने अन्य धर्मों के साथ द्वेष करने के कारण
साम्राज्य के विनाश के बीज बो दिया है । अहो, मायम कौन बदल
सकता है । पूर्वं सम्राटों के अनुग्रह के कारण कृतज्ञ हम अपना सेवक
धर्म निभा रहे हैं ।

शिवराज—राजन्, मैं विपरीत समझता हूँ । क्योंकि

अपने धर्म पथ से विचलित हुये स्वामी को यदि सेवक त्याग देता
है तो वह दोषभागी नहीं है । गुणों के युक्त विभीषण ने अपने बड़े भाई
को जो पर श्री सीतुर था, त्याग दिया था । ७

जयसिंह—अहो, क्षत्रियवीर, इस प्रकार धर्मतरव की श्याम से

मै मनीषाम् । सभाप्यस्माकं तु पूर्वैरुपहृत एव वर्त्मनि मंसगिकः पक्ष-
पातः । (ऊर्ध्वं विसोक्ष्य) ग्रहो निशीथकन्था हि रजनी । याधद्वात्रि-
ष्ट्यानि परिसमाप्य शयनमारोहाय ।

(इति निष्क्रान्तौ)

(पटीक्षेपः)

समाप्तोऽयं भोगलेशानुसंधाननामा

सप्तमोऽङ्कः



तुम मेरे हृदय को भ्रम में डाल रहे हैं । तयानि मैं पूर्व से अपनाए हुए
मार्ग में रहने का ही पक्षपाती हूँ । (ऊपर देखकर) ग्रहो, यद्यं रात्रि धा
गयी । रात्रि के कार्य समाप्त करके चलो शयन करें ।

(दोनों चले जाते हैं)

(परदा गिरता है)

भोगलेशानुसंधान नामक

सातवाँ अंक समाप्त



अष्टमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति निजोपवनं प्राप्तादरवस्थितः रामसिंहः)

रामसिंहः— (स्वगतम्) ग्रहो नानानयप्रयोगपटुनाऽपि शिवराजेन
पितृनययज्ञवदेनाभिनन्दित मोगसेशानुसन्धानम् । तद्विदेशयतिना
घानेनापहाय स्वमानमारुध्य च मोगसपदातिनायकं तस्मै समपिताः
पुरन्दरप्रभृतयो दुर्गप्रवरा । एवापितदथ निजपुत्रराजो मोगससेनायाम-
धिकारपदे । इत वित्रय दस्ताऽभयोऽप्यो मन्त्रिनिहितराज्यभारः
सार्वभौमसमागमायंमत्र सप्रसतः केवलमोत्सुहयेन कालं पापयति ।
इतदथ निजमातुलान्यश्रद्धाक्षिप्तहृदयो मोगसेना. पूर्ववत्सहिमन् सवि-
शेषभावो न तःपते । निजाज्ञयैव मोगसपुत्रराजवद्वरैरिति प्रतिनिवेश

आठवीं शंका

सभावितस्यास्य तु सामन्तसाधारणोपचारपराऽत्र सत्क्रिया केवल
सधुक्षयिष्यति निर्वाणभूयिष्ठं पूर्वं धरानलम् । ग्रहो धिगिनामनव
स्थितिं लोकपालानाम् । यद्

पाश्वस्थानुचरोपजापमुपिता यक्कुर्वन्ते सुप्रतान्,
दुर्वृत्तानपि चाटुवादिर्विजिता स्तिष्यन्ति प्रमृणाधमान् ।
मिथ्योत्सेकहृता द्विपन्ति च हितान् सतर्जयत्पूजितान्,
दोलाचञ्चलचित्तवृत्तय इमे स्वाराधनीया कथम् ॥१

(पुरतो विलोचय) एष परिसमाप्य प्रसाधन विधिमुपस्थित
सह्येश्वर ।

पाश्वस्थेति—पाश्वस्थानमनुचराणामुपजापेन तत्कृतभेदनेत्यर्थ
मुपिता अपहृता इमे नराधिपा सुप्रतान् न्यक्कुर्वन्ते चाटुवाद मिथ्या-
स्तुतिभिर्विजिता वशीकृता दुर्वृत्तानधमानपि प्रमृणा स्तिष्यन्ति तेषु
विश्वसनीत्यर्थ । मिथ्या उत्सेकेन गर्वेण हृता हितान् द्विपन्ति उजितान्
बलिनश्च सतर्जयन्ति भवगणयन्ति । दोलावत् चञ्चला चित्तवृत्ति येषा
ते इमे तु कथमाराधनीया ।

साधारण सामन्त के समान स्वागतोपचार होगा तो पहले की शत्रुता
द्विगुणित होकर प्रकट हो जायगी । ग्रहो, राजाओं के अस्थिरचित्त को
धिक्कार है । यद्योकि

पास रहने वाले अनुचरो की भेदनीति से प्रभावित रहने से य
गुणीजनो का अनादर करते, दुराचरण करनेवालो की चाटुकारिता के
कारण उन अधमो से अनुराग रखते (विश्वास करते) मिथ्याभिमान
के प्रभाव से हितैषियो से द्रोह रखते और बलशाली भी निन्दा करते
हैं, ऐसे दोला के समान चञ्चल चित्तवृत्तियालों की सेवा करना
बटिन है । १

(सामने देखकर) भलीभांति सज्जित होकर सह्येश्वर उपस्थित हैं ।

शिवराज :—(प्रविश्य) टिष्ठ्याद्य भविष्यति चिरप्रार्थित. सार्व-
भौम समागम ।

रामसिंह .—अथ किम् । परंत्थपरिचिताः सन्त्येत मोगलेश्वरा
श्रायं समुदाचारस्य । तन्महाराजेनोपेक्षणीयस्तेषामाचारातिक्रमः ।

शिवराज :—कुमार, सम्पक् परिचितोऽस्मि यवन समुदाचारस्य ।

द्वारपाल :—(प्रविश्य) विजयतां कुमार । जातः खलु सार्वभौम-
सभोपासनसमय ।

रामसिंह :—साधयामस्तावत् । भद्र आदेशय सार्वभौय प्रासाव-
माणम् ।

द्वारपाल :—इतइतो देवो । (सर्वे परिक्रामन्ति)

शिवराज :—(पुर निर्वण्य) अहो,

शिवराज—(प्रवेशकर) भाग्यवशात् आज बहुत दिनों से अभीष्ट
सार्वभौम के दर्शन होंगे ।

रामसिंह—निश्चित परन्तु ये मुगलशासक हमारे सामाजिक
व्यवहार से अपरिचित है । इसलिए महाराज उनके व्यवहार की-
चुटियों पर ध्यान न दें ।

शिवराज—कुमार, मैं यवनों के सामाजिक आचाररिति से
असीभौति परिचिन हूँ ।

द्वारपाल—(प्रवेशकर) कुमार की विजय हो । सार्वभौम के
सभा में उपस्थित होने का समय हो गया ।

रामसिंह—चलिए पते । भद्र, सघाट के महल का मार्ग
दिशाओ ।

द्वारपाल—इधर, इधर से देव । (सभी प्रणमन करते हैं)

शिवराज—(नगर पर दृष्टि डालकर) अहो,

सलित तद्वितानंर्मण्डिता राजमार्गः,
स्फटिकविमलभासः सौधवासः समृद्धा ।
यवनजयनयानः संकुलेष विशाला;
विविधविपणपण्या राजते राजधानी ॥२

रामसिंहः—महाराज कि बहुत । साक्षाद् विलासभूमिरेषा
विलासिनां मोगलराज कुलेश्वराणाम् ।

द्वारपालः—एते संप्रयता वय सावर्भौमसभामण्डपद्वारम् ।
सत्प्रविशतां देवो ।

(इति निष्क्रान्त)

(पट्टीभेष.)

ललितेति—ललिताः ये तरवः तेषां वितानानि येषु तैः राजमार्गः
मण्डिता मलङ्कृता स्फटिकस्य विमल. भास. द्युतिः इव भासः येषां
तैः सौधवासः सुधया निर्मितः मन्दिरैः समृद्धा यवनानां जवनैः वेगवद्भिः
मानैः च सङ्कुला विविधाः विपणायः पण्यानि च यस्यां सा इय विशाला
राजधानी राजते ।

सुन्दर घुमो के वितान से शोभित राजमार्गों से युक्त, स्फटिक की
झलती श्वेत बर्ण वाले राजप्रासादों से समृद्ध मुगलों के तीव्रगामी रथों
विविध श्राजारों एवं विक्रेयवस्तुओं से परिपूर्ण यह विशाल राजधानी
शोभित है ।२

रामसिंह—महाराज बहुत कहने से क्या । विलासप्रिय मुगल-
सम्राटों की साक्षात् विलासभूमि है यह ।

द्वारपाल—यह हम लोग सावर्भौम के समान मण्डप-द्वार पर पहुँच
गये । भयः प्रवेश करें देव । (चला जाता है)

(परदा गिरता है)

(ततः प्रविशति सभामध्यवर्ती मयूरासनस्थ सार्वभौमः)
 धीरिणौ—(वीणावाद्येन गायत)

(कर्णाटिरागेण भ्रम्पातालेन गीयते)

सताकुञ्जलीना ।

तृणाङ्गु शयाना स्वबाहूपधाना ।

स्थय वीतमाना प्रिये सावधाना ।

शुचा विह्वला से नवीना निलीना ॥सता०॥१

पद ते लपन्ती वियोगे तपन्ती ।

मल्ल स्नापयन्ती तनु म्सापयन्ती ।

रुजा क्षीयते कान्तहाना निलीना ॥सता०॥२

अयस्थानमन्ते प्रियाया धर ते ।

विलम्बेऽशुभतेऽनुतापो दुरन्ते ।

क्षण याचते नाथ दीना निलीना ॥सता०॥३

(उसके बाद मयूरासन पर स्थित सभा के मध्य सार्वभौम का प्रवेश)

धीरावाचक—(वीणावादन के साथ गाते हैं)

(कर्णाटिराग भ्रम्पाताल में गाया जाता है)

(यह राधा की दूती द्वारा कृष्ण के प्रति कही गयी उक्ति है ।)

दूती कह रही है—हे कृष्ण ! लताओं के कुंज में लीन (बंठी) तूणों की
 शय्या पर अपने बाहुओं की तकिया लगाये, अपने मान का त्याग कर,
 अपने प्रियतम में मन को रमाये हुए, नवानुराग में (विरह दुःख में)
 ध्याकुल है ।१ तुम्हारे विरह-गीता का उच्चारण करती, वियोग में
 जलती घासुओं से मुख की धोनी हुई, (इस प्रकार अपने शरीर को
 दीण करती) अपनी घोसा से हीन हो रही है ।२ तुम्हारी प्रिया के
 समीप तुम्हारा पहुँचना भायन्त उचित है, जिसम्ब करने पर प्रयुक्त
 की घातका है और उसके नष्ट हो जाने पर तुम्हारे लिए परचाताप
 का विषय होगा । हे नाथ वह तुम्हारे क्षणभर के समागम की याचना
 करती है ।३

शिवराज :—(रामसिंहेन सह प्रविश्य संगीतमाकर्ष्य स्वगतम्) ब्रह्मो, मत्प्रियोगेन दुरवस्थामनुभवसि मम महाराष्ट्रभूमिरिति सूचितमनेन मेवपदेन ।

रामसिंह :—(शिवराजेन सह सार्वभौमभुपसृज्य) विजयतां सार्वभौम । एष सार्वभौमादेशानुवर्ती समुपस्थित शिवराजः ।

शिवराज :—(त्रिः प्रणम्य) धनुगृहणातु सार्वभौमः, उपहारपरिग्रहेण । (इति श्लान्गुपहरति) ।

मोगसेन :—(रामसिंह प्रति) जसवन्तसिंहपाश्यं एनमुपवेशय ।

रामसिंह :—(यदाज्ञापयति सार्वभौम) । (इति यथादिष्टं कुरुते)

शिवराज :—(अपवायं) कुमार कोऽयं जसवन्तसिंहः ।

रामसिंह :—(अपवायं) एष तु जोधपुराधीश सार्वभौमस्य परमविश्वासभाजनम् ।

शिवराज—(रामसिंह के साथ प्रवेश और संगीत सुनकर) ब्रह्मो, मेरे प्रियोग से दुरवस्था का अनुभव कर रही है मेरी महाराष्ट्रभूमि, इस गीत से सूचित होता है ।

रामसिंह—(शिवराज के साथ सम्राट के पास पहुँचकर) विजय हो सम्राट । सम्राट के आदेश का पालन करनेवाला यह शिवराज उपस्थित है ।

शिवराज—(तीन बार प्रणाम कर) उपहार स्वीकार करके धनुगृहीत करें सम्राट । (रत्न आदि उपहार देता है)

मोगसेन—(रामसिंह से) जसवन्तसिंह के पास इसे बँटाओ ।

रामसिंह—जो आज्ञा सम्राट । (आदेशानुसार करता है)

शिवराज—(अलग) कुमार, वीन है, यह जसवन्तसिंह ।

रामसिंह—(अलग) यह जोधपुरनरेश सम्राट के परम विश्वासी व्यक्ति हैं ।

शिवराज —(अपवायं सरोवम्) आः किमहं मत्सरिणा मोग-
लेशेनैवमपमानार्थमत्र निमन्त्रित । सन्ति जोषपुरेशातिशायिनस्तु
मभापरसामन्ताः । अरे कोऽयमधिकेयः ।

रामसिंह —(अपवायं) प्रसोदतु महाराजः ।

मोगलेश —(अपवायं) अरे किमती जल्पति ।

रामसिंह —(अपवायं) अपरिचितजनसमदं केवलं मद्वेद्य
धर्मपीडितो वनशादूँस ।

मोगलेश :—तत्प्रापर्येन स्वप्तिवेशम् ।

रामसिंह —तया ।

(इति शिवराजेन सह सभामण्डपाद्दहिनिगत्य परिक्रामति)

शिवराज :—(साक्षेपम्) कुमार,

निमन्त्रितस्याधमतिममेय, किं सर्वभौमेश्वरतानुरूपा ।

क्षुद्रोऽयवा प्राप्य महत्पद निज निरर्ग सिद्ध भ जहाति साधवम् ॥३

शिवराज—(अलग प्रोध मे) ग्राह, क्या मैं दुष्टहृदय ईर्ष्यालु मुगल
सम्राट् द्वारा इस अपमान के लिए निमन्त्रित किया गया । जोषपुरनरेश
से तो मेरे अन्य सामन्त भी बडे हैं । ओह, यह कैसा अपमान ।

रामसिंह—(अलग) महाराज शान्त हो ।

मोगलेश—(अलग) अरे, यह क्या कहता है ।

रामसिंह—(अलग) घाम से व्याकुल यह वनराज जनसमूह से
अपरिचित होने के कारण गरज रहा है ।

मोगलेश—तो इसे उसके लिविर मे भेजो ।

रामसिंह—ठीक है ।

(शिवराज के साथ सभा मण्डप के बाहर निकलकर घूमता है ।)

शिवराज—(ध्वज्य से) कुमार, निमन्त्रित करके मुझे अपमानित
करना क्या यह सम्राट् के अनुकूल है ? अथवा क्षुद्र जन महान्पद
प्राप्त करने पर भी अपनी स्वभाव सुखभ क्षुद्रता नहीं छोडते ॥३

रामसिंह—महाराज कस्यावि धूर्तस्येद विचेष्टितमिति तर्कये
एते संप्राप्ता वयमस्मग्मन्दिरम् । यावत्प्रविशामः ।

(तत्त प्रविशन्ति मन्दिरावस्थिता शिवराजं प्रतिपालयन्तो भूत्या.)

भूत्या—(उत्थाय) स्वागत देवस्य ।

शिवराज—(रामसिंहेन सह प्रविश्य) दुर्ध्वनो विकलीभूतोः
स्माकं मनोरथ । (इति सर्वे सहोपविशति)

रामसिंह—महाराज सद्य एव सिद्धिपयमारोक्ष्यति तव मनोरथ

शिवराज—(साकूतम्) कुमार दुरयगाह्यो हि दुरात्मना न
प्रचारः । तद्दृष्टमानेन प्रतापं वशीकृत्वा ऋजुपिय क्षत्रेद्वरा अने
धूर्तेन क्षत्रकुलविनाशार्थेव इति प्रतीयते । सिद्धे कार्ये त्वेतेषा साव
भोमनिष्ठानां भावि सपर्याकल शङ्कास्पदमेव ।

रामसिंह—महाराज भिष्यैवैव ते वितर्कः । अचिरेण प्रकृति

रामसिंह—महाराज, मेरी धारणा है, यह किसी धूर्त का क
है । यह हमलोग अपने महल को घा गए । चले प्रवेश करें ।

(उसके पश्चात् शिवराज की प्रतीक्षा करते सेवक मन्दिर
दिखायी पड़ते हैं)

सेवकगण—(उठकर) स्वागत, देव ।

शिवराज—(रामसिंह के साथ प्रवेशकर) दुर्भाग्य से हम
मनोरथ विकल हो गया (सबके साथ बैठ जाते हैं)

शिवराज—(सन्नाशय) कुमार, दुष्टों की नीति को जानना ब
कठिन है । मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि, अत्यन्त आदर, सम्मान
सरलमन क्षत्रिय राजाओं को उसने बश में करके, उन्हें ही क्षत्रि
के विनाश हेतु नेता बना दिया है । परन्तु मुझे सन्देह है कि कार्य नि
हो जाने पर भी इनकी निष्ठा इसी प्रकार सघाट् के प्रति रहेगी ।

रामसिंह—महाराज, यह आपकी गलत धारणा है । शीघ्र

मापन्न सार्धभौम सभा जयिष्यति त्वा यथाहोपचारविभक्तौ । अयमहं
सार्धभौममुपेत्य पुनरपि त्वत्समागमायं प्रयते । (इति निष्क्रान्त)

शिवराज —ग्रहो बत मर्त्तु कण्डम् । यद्
नानाबिलासविभवैर्बद्धतामुपेता,
राजन्यघान्धव इमे विहृतात्मभाव ।
त्यक्त्वा निज सपदि देशकुलाभिमान,
नष्टा स्वयं स्वजनमाशु विनाशयन्ति ॥४

रघुनाथपत्त —वेध यस्तत्पम्

यव तुच्छभोगापहृतात्ममाना, स्वधर्मभ्रूडा उदरभरीश्वराः ।
यव राष्ट्रसत्यापननिश्चितव्रतो, धर्माश्रितो जीवितनि स्पृहो भवान् ॥५
हीरोजी — (परितोषिलोषयससधर्मम्) हा धिक् । महबत्प्राहितम् ।

सच्चाट्, प्रकृति से घाने पर प्राप्त सम्मान यथोचित रूप से करेंगे ।
मैं यह सच्चाट् के पास पहुँचकर आपके समागम का प्रयत्न करता हूँ ।
(बला जाता है ।)

शिवराज—ग्रहो, महान बलेश वा विषय है । कि—

ऐश्वर्य और भोग-विलास की विविध सामग्रियों के वशीभूत ये
क्षत्रिय वन्धु घातमभाव को नष्ट कर, अपने देश, कुल के अभिमान को
त्याग दिये हैं और इस प्रकार ये स्वयं को नष्ट करके घन जानिवालों
को नष्ट कर रहे हैं ।४

रघुनाथपत्त—देव, वस्तुतः,

कहाँ तो तुच्छ भोग-विलासों के कारण करने सम्मान को छोड़कर,
स्वधर्म के विमुख उदर भरनेवाले स्वार्थी ये राजा और कहीं, राष्ट्र की
स्यापना के लिए दूरप्रतिज्ञ, धर्मनिष्ठ, तदर्थ प्राणों की भी चिन्ता न
करनेवाले घाय, दोनों की तुलना नहीं है ।५

हीरोजी—(चारों ओर देखकर घबड़ाहट से) पिक्कार है । घोर
भाषति ।

शिवराज :—(पुरतो विलोक्य) हा बन्दीकृता. स्मो विश्वासा-
घातिना मोगलेशहतकेन (समगताद्विलोक्य) अहो समगतोऽवदृ-
मस्मन्मन्दिर मोगलसैनिकः । (निश्चय) नूनं यत्नदासस्य जयसिंह-
स्य वयसि वर्तमानेन मया स्वयमेव निमन्त्रित प्राणसङ्कटम् ।

अस्मिन्निसर्गकुटिले वितयप्रतिज्ञे, विश्वासमागमवतो नमश्च्युतिर्मे ।
मिथ्यावलेपविवशोवरमग्रहीनः, सत्त्वोच्च्युतोऽप्यरिबश सहसा प्रयाति ॥५

रघुनाथपन्त —देव, सत्य विप्रलब्धा वयं जयसिंहेन । पद्

स्वच्छन्दगामी गिरिशङ्करालयो, दृढप्रतापैरपि दुष्प्रथम्यः ।
यनेश्वरोऽनेन महाप्रलोभनेरापादितो व्याधशराप्रसक्षयताम् ॥७

शिवराज—(सामने देखकर) हा, दुष्ट विश्वासघाती मुगल
सम्राट् द्वारा हम बन्दी हो गये । (चारो ओर देखकर) अहो, मुगल
सैनिकों द्वारा हमारा महल चारो ओर से घिर गया । (निश्वास
लेकर) यत्रनो के दास जयसिंह की बात मानकर मैंने स्वयं यह
प्राणसंकट निमन्त्रित किया है ।

स्वभावतः कुटिल, असत्यवादी इस सम्राट् पर विश्वास करने
मैंने बहुत बड़ी राजनीतिक भूल की है, महान् पराक्रमशील व्यक्ति भी
उचित मन्त्रणा से हीन, मिथ्याभिमान के वश में पड़कर सहसा सन्तु के
हाथों पट जाता है ।६

रघुनाथपन्त—देव, सत्यतः हमसोयं जयसिंह द्वारा ठगे गये ।
जयसिंह

इसने स्वेच्छापूर्वक विचरण करनेवाले, पर्वत की गुफाओं के
निवासी, महान् पराक्रमी द्वारा भी वश में न आनेवाले बनराज (सिंह
शिवराज) को प्रसन्न देखकर व्याध के बाणों का मद्य बना दिया ।७

मोगलनायक :—(प्रविश्यापटीक्षेपेण) राजन्, कुटिलराजपुरुषोऽय-
स्त्वांरक्षितुं समागमान्तरावधि प्रतिसिद्धस्ते स्वतन्त्रसत्त्वारं सार्धं-
भीमेण ।

शिवराज :—अनुग्रह एव सार्धंभीमस्य । तस्यैव भूयोदर्शनार्थं मया
व्यवसोयते ।

मोगलनायक :—राजन् साधयामि त्ववानामय निवेदयितुं सार्धं-
भीमाय । (इति निष्क्रान्तः)

रघुनाथपन्त :—नार्हति देव इदानींभारतमनमवसादयितुम् । यतः

कथं प्रपन्नोऽस्मिन्तान्तदुर्गतिमकाण्ड इत्येव कृपा वितर्कः ।

आसाद्य काष्ठ जलघो विपन्नः प्रकल्पयेत्सतरणाय साधनम् ॥८

तच्छोभमेव विच्यता कोऽपि दुर्गसतरणोपाय ।

शिवराज —सम्पगवधारित मोगलेशस्वभावेन मया प्रागेवोप-

मोगलनायक—(सहसा प्रवेशकर) राजन्, कुटिल राजपुरुषो से
आपके रक्षणार्थ, अपने समागम की अवधि तक आपका स्वेच्छापूर्वक
विचरण सम्राट् ने निषिद्ध कर दिया था ।

शिवराज—मह सम्राट् का अनुग्रह है । मैं पुनः दर्शनार्थ प्रयत्न
कर रहा हूँ ।

मोगलनायक—राजन्, मैं आपकी कुशलता का समाचार सम्राट्
को जाकर देता हूँ । (चला जाता है)

रघुनाथपन्त—देव, भव हमे अपना सहस नही छोडना चाहिए ।
व्योक्ति

अध्यायक हम यह कैसे इस दुर्गति को प्राप्त हो गये सोचना व्यर्थ
है, समुद्र में डूबता हुआ व्यक्ति काष्ठ के सहारे तैरने का प्रयास
करता है ॥८

प्रतः शीघ्र ही इस विपत्ति से मुक्ति के लिए कोई उपाय सोचिए ।

शिवराज—मोगलसम्राट के स्वभाव से परिचित होने के कारण

कल्पित. प्रयाणप्रबन्धः । तच्छृणुत सर्वे सावधाना । प्रथमं तावद-
 स्मदागमनोत्सवोपासनमिषेण स्कन्धेनोह्यन्ता मिष्टपदार्थं परिपूर्णं
 बृहत्कारण्डाः प्रतिपरिचितक्षत्रकुसुमन्दिरम् । समवलोकितेषु च
 केषुचित्करणेषु नष्टाशङ्का भविष्यन्ति मोगसार्थकृतः । मनन्तरं च
 निर्लोकहितम् करण्डे साधयिष्यामि साम्प्रतस्य मम निर्गमम् ।
 भवद्भिश्च सर्वैर्नानामिर्वनिर्गत्यावां प्रयागमार्गान्तराले प्रतिपालनीयो ।
 एष हीरोजीरात्मान रोगाक्रान्तशिवराज एवापयन सानुचरो भ्राम-
 यित्पदवधरोधकगणभाप्रदोपागमम् । ततस्तेनाऽपि सानुधरेण सवेत-
 स्यानमभ्युपगन्तव्यम् । ततश्च नानाहृद्यवेपथरा यद्य मुग्धे प्राप्स्यामी-
 ऽस्मत्सहाप्रदेशम् । इति

रघुनाथपञ्चतः—देव सम्यगुपस्थितोऽयं प्रयाणप्रबन्धः । तददे-
 क्षिनायक्रमाय प्रतिष्ठतामापणमस्मद्भ्यपाल ।

ब्रह्मपाल — तथा । (इति निष्क्रान्त)

रघुनाथपति — ग्रह तावत्सोपयामि रामसिंहमन्दिरम् । (इति निष्क्रान्त)

मोगलनायक — (प्रविश्य) राजन् निवेदिन तवानामय साव-
भीमाय ।

शिवराज — सप्रति तु प्रबलोदरगुलपोडितस्य नारित मे स्वास्थ्य-
सेवा । मुखप्रसुप्तस्य तु कदाचिद्भविष्यति मे वेदनानिग्रह ।

मोगलनायक — इत्युपस्थापयामि राजर्ष्यम् ।

शिवराज — घानिशीथ मुखदायनेन यदि न निरास्थते मे वेदना-
प्रक्षयस्तथानामेव भविष्यति राजर्ष्येण प्रयोजनम् ।

मोगलनायक — साधु । (इति निष्क्रान्त)

ब्रह्मपाल — (प्रविश्य) देव श्रीता एते मिष्टानपूणा पञ्चविंशति
करणा ।

ब्रह्मपाल—ठीक जा घाना (जाता है) ।

रघुनाथपति—मैं रामसिंह के महल को जाता हूँ । (चला जाता है)

मोगलनायक—(प्रबन्धकर) राजन् सम्राट् से आपके सुस्वास्थ्य के
विषय में निवेदन कर दिया ।

शिवराज—इस समय प्रबल उदरगुल की पीडा से मेरा स्वास्थ्य
ठीक नहीं है । कदाचिन गान्धी निद्रा के बाद पीडा कुछ दान्त होगी ।

मोगलनायक—बेया राजर्ष्य को बुलाऊँ ।

शिवराज—राजमर दहरी निद्रा में सोने के बाद भी यदि मेरी
पीडा शान्त न होगी तभी राजर्ष्य की भावपयना पड़ेगी ।

मोगलनायक—ठीक है । (चला जाता है) ।

ब्रह्मपाल—(प्रबन्धकर) दूध, मिठाईयों से पूर्ण ये पचीन
टोकरियाँ तैरीयेंगी ।

शिवराज —अपने क्रमेणस्मदनुचराधिष्ठितान् बन्द वाहयं तान ।

ब्रह्मपाल —तथा । (इति यथोक्त कुरुते)

हारोजी —(पुरतो विलोक्य) देव, परीक्ष्य पञ्च करण्डान् विरतो

मोगलनायक । त्वनयो करण्डयोनिस्त नो भवता देव कुमारश्च ।

उभो—तथा । (इति निलीयते)

हीरोजी —(क्रमेण करण्डान् वाहयित्वा पुरतो विलोक्य) दिष्ट्या

कुमारेण सह निर्विघ्न निष्क्रान्तो देव । यावदह छद्मवेषधरो भूत्वा

शयनमारोहामि । (इति तथा कुरुते)

मोगलनायक —(प्रविश्य) अपि लक्ष्यते वेदनापकथं ।

अनुचर —आर्यं इदानीमेव सुखं प्रवृत्ता बलबद्धुदरगूलपीडितस्य

देवस्य निद्रा । तन्नाहृत्यार्यो वचनमात्रेणापि निद्राभङ्गं विधातुम् । स्वय-

मेकाहमार्यापि निवेदायष्यामि सुप्तोत्थितस्य तस्य कुशलं वृत्तान्तम् ।

शिवराज—क्रम से एक एक करके मेरे अनुचरों द्वारा इनको निकलवाओ ।

ब्रह्मपाल—जंसी भाजा । (कथनानुसार कार्य करता है)

हीरोजी—(सामने देखकर) देव, पाँच टोकरियों का परीक्षण

करके मुगल अधिकारी परीक्षण बन्द कर दिये । इसलिए अब आप

और कुमार इन दो टोकरियों में छिप जायें ।

दोनों—ठीक है । (छिप जाते हैं)

हीरोजी—(क्रमानुसार टोकरियाँ निकलवा, सामने देखकर)

भाग्य से कुमार के साथ निर्विघ्नरूप से देव निकल गए । मैं अब

छद्मवेष में शयन करूँ । (उस प्रकार करता है)

मोगलनायक—(प्रवेशकर) क्या पीडा कम हुई ?

अनुचर—पत्यधिक उदरगूल से पीडित देव को अभी ही निद्रा

घायी है । अतः शब्द मात्र में भी आर्य की निद्रा भंग करना उचित

नहीं है । मैं स्वयं उनकी कुशलता का समाचार उनके शयनोपरान्त

उठने पर आपको दूँगा ।

मोगलनायक—तथा । (इति निष्क्रान्त)

हीरोजी—एतावता कालेन समुत्सङ्घित स्यान्नगरसीमातो देवेन । तदायामपि तावत्प्रतिष्ठावहे । (इतिच्छद्येवथ परित्यज्य सानुचरो निष्क्रान्त)

मोगलनायक—(प्रविश्य स्वगतम्) अहो, कथमयमेकाक्षी गाढ स्वपिति । इव गता अस्यानुचरा । (प्रकाशम्) क कोऽत्र भो ।

दृढसैनिक—(प्रविश्य) घानापपत्वार्यं ।

मोगलनायक—अरे पश्य किमेव विगतचेतन इव लक्ष्यते शयन-गत शिवराज । न च दृश्यते कोऽप्यस्यानुचर ।

सैनिक—(शयनमुपसृत्य वस्त्राण्युद्धृत्य ससभ्रमम्) धार्यं इव शिवराजः । एतानि स्वस्य वसनान्येव ।

मोगलनायक—(ससभ्रममृसाद्यस तारत्येवशा) हा रता स्म ।

मोगलनायक—ठीक है । (चला जाता है)

हीरोजी—इतने समय में देव नगर की सीमा पार कर चुके होंगे । तो अब हमलोग भी प्रस्थान करें । (छपवेदा छोड़कर सेवक-सहित जाता है ।)

मोगलनायक—(प्रवेश कर स्वगत) अहो, यह प्रकेले गहरी नींद में क्यों सो रहा है । इससे अनुचर कहाँ गये ? (प्रकट) कौन है ?

दृढसैनिक—(प्रवेश कर) घाना धार्यं ।

मोगलनायक—अरे, देखो शिवराज निष्प्राण-सा शयन स्थान पर प्रतीत होता है ? और उसके कोई सेवक भी नहीं दिखायी पड़ते ।

सैनिक—(शयन स्थान तब पहुँच, वस्त्रों को हटाकर, धरदाहट से) धार्यं शिवराज कहाँ हैं ? ये तो केवल उसके वस्त्र हैं ।

मोगलनायक—(धबकाकर, चौङ्गना का तीव्र स्वर में) हा मारे गये ।

नेपथ्ये—(घायं मा भेषी । सनिहिता स्म उद्धृतकृपाणा ।
सैनिका (प्रविश्य लङ्गान्मुद्यम्य) घायं दशय । क्व सन्ति ते
प्राणद्रुह ।

भोगलनायक —(सरोषम्) रे आत्मा, भवन्त एव मे प्राणद्रुह ।
श्वास्ति शिवराज ।

सैनिका —घायं, भवेदत्रकुश्रापि प्रच्छन्न । (इति समन्ताद-
श्विष्यन्ति)

भोगलनायक —(ससभ्रमम्) घरे निपुणमवेक्षध्वम् ।

सैनिक —घाय न लभ्यतेऽसौ कितव ।

प्रथम —घरौ दानवस्तु स्वमायया तिरोहितो भवेत् ।

द्वितीय —घरे कदाचिद्विष्णुमार्गणोद्गत स्यात् ।

तृतीय —मूढ, भूगर्भभागणव सभवरयस्य पलायनम् ।

नेपथ्य मे—घायं, भय न करें । हम लोग तलवार लिए तैयार है ।
सैनिकगण—(प्रवेशकर और तलवार निकाले हुए) घायं निशायें ।
आपके प्राणद्रोही कहीं हैं ।

भुगलनायक—(त्रोध से) घरे, बाबालो, आप सब ही हमारे
प्राणद्रोही हैं । शिवराज कहां है ?

सैनिकगण—घायं, यहीं कहीं छिपे होंगे । (चारों ओर दूढ़ते हैं)

भुगलनायक—(पदटाहट में) घरे सावधानी से देखो ।

सैनिकगण—घायं, नहीं मिलना वह घूर्त ।

प्रथम—यह घपन छल द्वारा दानवस्तुषो में छिपकर नायब हा
ममा हागा ।

द्वितीय—घरे, कदाचिन् वह घातानमाग से बला गया ।

तृतीय—मूढ, उसका भाग जाना भूगर्भ मार्ग से ही सम्भव है ।

मोगलनायकः—(सरोयम्) अरे अनभिजाताः । नायं वितर्कवितरः ।
कुतोऽपि निगृह्यान्व-तु तं सार्वभौमवन्धिन ममसमक्षम् ।

(सर्वे पुनरपि मृगयन्ते)

बृद्धसैनिकः—(नायकमुपसृत्य) आयं यथाऽप्य कोलाहलः । स
पूर्तः कथमपि प्रच्छन्न पलायित इति तु सिद्धम् । तद्विषयमेवैव
सार्वभौमं गृहोत्थायं कुम्भं ।

मोगलनायकः—तथा । (इति निष्पान्ता सर्वे)

पटौक्षेप

समाप्तोऽयं प्रयाणप्रबन्धनामा

अष्टमोऽङ्कः



मोगलनायक—(शोध से) घरे नीचो, बिनर्क वा प्रवसर नहीं है ।
कहीं से भी, सम्राट् के उस बन्दी को पकड़कर मेरे सामने ले आओ ।

(सभी पुनः दूबले हैं)

बृद्धसैनिक—(नायक के पास पहुँचकर) आयं यह कोलाहल
कथं है । वह पूर्त किसी भी प्रकार छिपकर भाग गया, यह गिद्ध है ।
अतः दीघ ही सम्राट् को इसकी सूचना दी जाय ।

मोगलनायक—ठीक । (सभी चले जाते हैं)

(परदा गिरता है)

प्रयाण प्रबन्ध नामा

आठवाँ अंक समाप्त



नवमोऽङ्कः

(ततः प्रविशत्यन्तर्गृहावस्थिता राजमाता)

राजमाता—(स्वगतम्) श्रुतं मया चारेभ्यो यत्प्रतापं भोगलाघि-
कृताम् देशाद्देशान्तरं पयंटन् संप्राप्तो वरसः करवीरक्षेत्रम् । तदचि-
रेणात्र भविष्यति तस्य सुखागमनम् । अतः आज्ञप्तो मया प्रधानमन्त्री
सह्यदुर्गं लङ्घनाय । येनोपस्थिते वरसे शीघ्रं संपादितो भवेत्साम्राज्या-
भिषेकमहोत्सवः ।

कञ्चुकी (प्रविश्य) एष राजकार्यं व्याकुल प्रधानमन्त्री द्वारि-
तिष्ठति ।

राजमाता—प्रवेशयेत्तम् ।

नवां अंक

(उसके पश्चात् अन्तर्गृह में स्थित राजमाता का प्रवेश)

राजमाता—(स्वगत) शुभचक्रों से सूचना मिली है कि देश-देशान्तर
का भ्रमण कर, मुगल अधिकारियों को धोखा देते हुए मेरा पुत्र करवीर
क्षेत्र में पहुँच गया है । इसलिए शीघ्र ही वह सुख-पूर्वक यहाँ आ
जायगा । अतः प्रधानमन्त्री को मैंने आदेश दिया है कि सह्यदुर्ग पर
अधिकार कर लें । जिससे पुत्र के यहाँ आगमन पर शीघ्र ही साम्राज्या-
भिषेक महोत्सव सम्पन्न हो जाय ।

कञ्चुकी—(प्रवेशकर) राज्य-कार्यों से व्याकुल प्रधानमन्त्री द्वार पर
प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

राजमाता—उसे जाने दो ।

कञ्चुकी—तया । (इति निष्क्रान्तः)

प्रधानमन्त्री—(प्रविश्य) अस्म्य त्वदादेशानुरोधेन मयात्मसारकृताः पञ्चपाः सह्यदुर्गाः ।

राजमाता—मन्त्रिवयं, अभिनन्वामि तव युद्धपाटवम् । अयोप-सम्भा काव्यभिनवा प्रवृत्तिर्वत्तस्य ।

प्रधानमन्त्री—अज्ञावधि तु नास्ति श्रुतिगोचरा कापि देवस्या-भिनवा प्रवृत्तिः । सप्रति समागृह्णमुपेत्य जानामि देदान्तरप्रतिपत्तिम् । (इति निष्क्रान्तः)

कञ्चुकी—(प्रविश्य) एतेऽप्रभवती द्रष्टुकामा यतयो द्वारि तिष्ठन्ति ।

राजमाता—प्रवेशयैतान् ।

कञ्चुकी—तया । (इति निष्क्रान्त)

कञ्चुकी—ठीक है । (चला जाता है)

प्रधानमन्त्री—(प्रवेशकर) अस्व, आपके आदेशानुसार मैंने छह भे से पाँच सह्यदुर्गों को अधिकार में कर लिया है ।

राजमाता—मन्त्रिश्रेष्ठ, तुम्हारी युद्धकुशलता सराहनीय है । पुत्र के किसी नये समाचार की कोई सूचना मिली है ।

प्रधानमन्त्री—इस समय तक तो देव का कोई नया समाचार नहीं सुनायी पडा । समाग्रह में चलकर देवान्तर के समाचार मान्य करता है । (चला जाता है ।)

कञ्चुकी—(प्रवेशकर) आपके दर्शन को इच्छा से कुछ साधु द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

राजमाता—उन्हें बुलाओ ।

कञ्चुकी—ठीक । (चला जाता है ।)

पतयः—(प्रविश्य) वर्धता प्रायितफलधिगमेन राजमाता ।

राजमाता—(सप्रथयम्) प्रतिगृहीताशीः । दिष्ट्याद्य पवित्री कृतोऽयमुद्देशो भगवतां सानिध्येन । (वामाक्षि स्पन्दन सूचयित्वा स्वगतम्) अदि नाम लभेय मम वत्सस्य प्रवृत्तिम् ।

प्रधानपति—अम्ब तीर्थयात्राप्रसङ्गेनानोत्त मयाऽभियेकार्यमेतद्-गङ्गोदकम् ।

राजमाता—(प्रधानपतिं निर्वर्ण्य सविस्मयम् स्वगतम्) अहो केनचिदशेन सघटपस्य मुखच्छविममवत्सस्य मुखच्छविना ।

प्रधानपतिः—तद्गृह्णतु । (इत्युपसृत्य वत्समर्षयति)

राजमाता—महानेपोऽनुग्रहः । (इति गृह्णाति) अपि जायते कापि मम वत्सस्य प्रवृत्तिः ।

प्रधानपति—अम्ब नातिदूर वतंते तवात्मजः । (इति यतिवे

साधुगण—(प्रवेशकर) राजमाता अभीष्टफल की प्राप्ति से सम्पन्न हों ।

राजमाता—(वितन्नता पूर्वक) अनुग्रहीत है । भाग्य से आज यह क्षेत्र आप सबके आगमन से पवित्र हो गया । (बायीं ओर के फडकने का अनुभव करके स्वयं) क्या पुत्र के कुछ समाचार सुन सकती हूँ ।

मह्यसाधु—अम्ब, तीर्थ यात्रा के प्रसंग में मैं यह गगाजल अभियेक के निर्मित ले आया हूँ ।

राजमाता—(प्रधान साधु को मन्त्रीभाति देखकर, आश्चर्यचकित हो स्वयं) अहो, इस साधु की मुखाकृति मेरे पुत्र की मुखाकृति से कुछ समानता रखती है ।

मह्यसाधु—इसे ग्रहण कर लें । (पास पहुँचकर फलश देता है)

राजमाता—महान् अनुग्रह है यह । (ग्रहण करती है) क्या पुत्र के विषय में कुछ ज्ञात है ।

मह्यसाधु—अम्ब, आपका पुत्र बहुत दूर नहीं है । (साधुवेश को

पमपनीय) एष सुखप्रत्यागत शिवराजोऽभिवाद्ये । (इति पादयोः पतति) ।

राजमाता—(सविस्मयम्) ग्रहो वत्स शिवराज । न खलु मयाऽभिजातोऽसि । (सानन्दाश्रु हस्तयोर्ग्रहीत्वा) वत्स उतिष्ठ । विष्ण्वाद्यो-ज्जीवितास्मि ।

मुक्तस्य दुष्टमवनाधिपपाशबन्धात्,
प्रत्यागतस्य पुरतो मम सत्यितस्य ।
एतत्तथाननमुपोदनवप्रसाद
मा तपंपत्यतितरा तदण्डुकान्तम् ॥१

वत्स पूर्वमेव मयादिष्टेन मन्त्रिणा स्वापत्नीकृताश्वाकण-सह्यदुर्गाः । तदण्डनीतिमेव समाश्रित्य विजित्य च महाराष्ट्रप्रदेश संपादय तव साम्राज्याभिषेक मङ्गलम् ।

त्यागकर) सुखपूर्वक वापस आया यह शिवराज प्रणाम करता है । (चरणों पर गिरता है ।)

राजमाता—(विस्मय मे पडकर) ग्रहो वत्स शिवराज । निश्चित ही मैं पहिचान न सकी । (आनन्दाश्रुमा सहित हाथों से पकडकर) पुत्र उठो । भाग्य से पुन जीवित हुई ।

दुष्ट मवन सम्राट् के पाशबन्धन से छूटकर वापस आए हुए मेरे सामने खड़े तुम्हारा यह मुख नव चन्द्रमा क सदृश नयी छवि प्राप्त कर लेने के कारण मुझे अत्यन्त आनन्द पहुँचा रहा है । १

वत्स मेरे आदेशानुसार पहले से ही मंत्री ने श्वाकण आदि दुर्गों को अधिकार मे कर लिया है ।

अतएव अण्डनीति का सहारा लेकर, महाराष्ट्र प्रदेश को जीतो श्रीर अथवा साम्राज्याभिषेक पूर्ण करो ।

शिवराज — धम्ब स्वदेशानुरोधेनाविलम्बेनैव निधंतंयिष्येऽभिषेकमङ्गलम् । अत पर च स्वातन्त्र्येणैव प्रवर्तिष्यते मम राज्यतन्त्रम् ।
क कोऽग्र भो ।

कञ्चुकी—(प्रविश्य) आजापयतु देव ।

शिवराज — मन्त्रगृहमार्गमादेशय ।

कञ्चुकी—इत इतो देव । (उभौ परिक्रामत) एत-मन्त्रगृहद्वारं प्रविशतु देव । (इति निष्क्रान्त)

(तत प्रविशन्ति मन्त्रगृहावस्थिता मन्त्रिण)

मन्त्रिण —(उत्थाय) स्वागत देवस्य ।

शिवराज — भवान्मनुप्रहेण खलु रक्षितोऽस्मि ।

मन्त्रिण — देव, अद्य खल्वस्माक महाराष्ट्रस्य च सुप्रभातम् ।

वंतालिक — (नेपथ्ये) विजयतां देव ।

शिवराज—धम्ब ! आपके आदेशानुसार शीघ्र ही अभिषेक का कार्य पूरा होगा । और मेरा राज्यशासन स्वाधीन होकर चलेगा । कौन, कोई है ?

कञ्चुकी—(प्रवेशकर) आज्ञा देव ।

शिवराज—मन्त्रगृह का मार्ग दिखाओ ।

कञ्चुकी—इधर, इधर से देव । (दोनों घूमते हैं) यह है मन्त्रगृह-द्वार । (चला जाता है)

(उसके बाद मन्त्रगृह में स्थित मन्त्रियों का प्रवेश)

मन्त्रिण—(उठकर) स्वागत देव ।

शिवराज—भवानी के मनुप्रह से मेरी रक्षा हुई ।

मन्त्रिण—देव ! आज हमारे और महाराष्ट्र के लिए सुप्रभात का अवसर है ।

वंतालिक—(नेपथ्य में) विजय हो देव ।

कुटिलपयनपाशान्नीतियोगापसृप्तो
द्युमलिरिय समन्ताद्वाहुषा प्रस्तमुक्त्वा ।
चिरविरहविपन्नान् रञ्जयन् सह्यदुर्गा-
नुपचितनवतेजा राजसे राजसूर्ये ॥२
(अष्टोत्तरशतशतध्नीस्वनोपक्रम)

शिवराज—मन्त्रिण परम प्रीण्यति मां स्वतां सह्यजनामां च
राजनिष्ठा ।

प्रतिहार—(प्रविश्य) विजयतां देव । कोऽपि वंदेशिको द्वारि
संप्राप्तः ।

शिवराज—प्रवेशयन्तम् ।

प्रतीहार—तथा । (इति निष्क्रान्त)

वंदेशिक—(प्रविश्य) विजयतां देवः । कृतध्नेन मीगत्सेनो त्वमसि

शिवराजस्य पक्षपातीति निर्भर्तयं स्वाधिकारात्प्रभ्रशितो महाप्रतापो

राहु के सदृश चारो ओर से मचना के नीतिवाश द्वारा सूर्य के समान
ग्रस्त, होकर, अब उससे मुक्त यह राजसूर्य (राजाओं में सूर्य के
समान) नवीन तेज (दीर्घ से मुक्त, शोभित) चिरकाल से विमुक्त
सह्यदुर्गों को आनन्दित कर रहे हैं ॥२

(एक तो घाठ तोपो आ स्वर)

शिवराज—मन्त्रिण, आप लोगों और सह्य निवासियों की
राजनिष्ठा से मैं बहुत प्रसन्न हूँ ।

प्रतीहार—(प्रवेशकर) विजय हो देव । कोई विदेशी द्वार पर
प्राया है ।

शिवराज—उसे से घाघो ।

प्रतीहार—ठीक है । (चला जाता है)

वंदेशिक—(प्रवेशकर) देव की विजय हो । महाप्रतापी जयसिंह
की, कृतध्नेन मुगल सम्राट् ने उसने विरुद्ध यह शोषारोपण कर कि

जयसिंहः । ततश्च मुगलराजधानी यिनियुक्तोऽसौदुर्भन्तापमानो मार्ग
एव—'घातादित मया कृतघ्नसपर्याया मर्मविदारणं फलम् । यद्

प्राजन्मन. परिवरन् मननग्यभक्ति
स्वज्ञातिजनानपि भटाननयं विनाशम् ।
सोऽय वनोपसित विवस्वदेदृष्टयेः
संतर्जनेन मम हा हृदय भिनत्ति ॥३

हा विश्वनाथ देहि मे शरणम्—इत्याकृश्य प्राणानजहात् ।
तदमन्तं च सख्यंभोमानया तत्पदमारुहो मोदस पुयराजसहायो
जयवन्तसिंहः ।

शिवराज—(निःश्वस्य) विक्रमशालिनानपि नयमार्गविच्यु-
तानामपरिहार्यं एवेदृशो दुर्विपाक ।

प्रधानमन्त्री—देव नूनं शोचनीयामवस्थामापादितोऽय प्रवीरो
भोग्लेशहृत्केन ।

तुम शिवराज के पक्षपाती हो, उसके अधिकार से च्युन कर दिया है ।
उसके बाद मुगलराजधानी की ओर जाते हुए खिन्न मन वह रास्ते में
ही—कृतघ्न की सेवा शरके मैंने यह मर्मभेदी फल प्राप्त किया है ।

प्राजन्म मैंने जिस सम्राट् की एकनिष्ठ भाव से सेवा करते हुए
अपने जानीय जनो, वीरो तक का नाश कर डाला । उसी, इस वृद्ध
शरीर वाले की भर्त्सना से मेरा हृदय विदीर्ण होता जा रहा है । ३
हे विश्वनाथ ! मुझे शरण दें । 'इस प्रकार स्वयं को कोसता, उसने
प्राणों को त्याग दिया । उसके बाद मुगलयुवराज से सेवित जयवन्त
सिंह उसका उत्तराधिकारी बनाया गया ।

शिवराज—(निःश्वास छोडकर) विक्रमशाली पुरुषों के लिए भी
भीतिमार्ग छोड देने पर इस प्रकार की विपत्तियाँ आती हैं ।

प्रधानमन्त्री—देव, निश्चित ही दुष्ट मुगलसम्राट् ने उस वीर की
दशा शोचनीय बना दी ।

शिवराज—सप्रति खलु गांधाराणी नियमने व्यापृतोऽस्ति
मोगलेशः । तदस्माभिर्महार्हंरत्नोपायने समाराध्य दक्षिणावधाधिष
सद्य एवात्मसास्कर्तव्या महाराष्ट्रभू ।

प्रधानमन्त्री—देवस्योपस्थिते पूर्वमेव मया स्वाशस्तीकृताइवाकण-
प्रभृतयः सह्यदुर्गा । अत्रशिष्टानां दुर्गाणा कल्याणप्रान्तस्य चाक्र-
मणाय प्रस्थामया सेनानिवहा । परतूदयभाणपातित सिहगडदुर्गं
कथमाक्रमणाय इत्यतीवोत्फणितोऽस्मि ।

शिवराज—(विचिन्त्य) न कोऽप्यमात्यमन्तरेख्यंत्वं काम साधयितुं
क्षमोऽस्ति । सप्रति तु स्वात्मजस्योद्वाहकमणि ध्यप्रोऽसी नाहंति
प्रवाणानुशासनम् ।

(तत प्रविशत्पाटीक्षेत्रेण तानाजीः)

शिवराज—सप्रति मुगलसम्राट् गांधारो का नियंत्रित करने में व्यस्त
है । मत्र हमलोग बहुमूल्य रत्नादि के उपहार द्वारा दक्षिण प्रदेश के
राज्यपाल को तुरन्त अपने वश में करके समस्त महाराष्ट्र को जीत लें ।

प्रधानमन्त्री—देव के प्राणे से पूर्व ही मैंने चाकण आदि मह्यदुर्गों
को अधिभार में कर लिया है । नोय दुर्गों में से कल्याण प्रान्त पर
आक्रमण करने के लिए मैंने सैन्य समूह प्रेषित कर दिया है । परन्तु
उदयभाण द्वारा रक्षित सिहगडदुर्ग कैसे अधिभार में हो, यह अत्यधिक
चिन्तनीय है ।

शिवराज—(सोचकर) मन्त्री के प्रतिरिक्त अन्य कोई भी यह
कार्य संपादित करने में समर्थ नहीं है । इस समय अपने पुत्र के विवाह
कार्य में व्यग्र होने के कारण प्रधान-हेतु उन्हें आदेश नहीं दिया
जा सकता ।

(उसके पश्चान् परका हटाकर प्रधानव तानाजी का प्रवेश)

शिवराजः—(सविस्मयम्) ग्रहो घमात्यः । अयि सपन्न मङ्गल-
कार्यम्

तानाजी—देवायानुग्रहेणंतरमुसपन्नमेव । यत स्वयमेवाम्बा
निर्वाहमिष्यति विवाहोत्सवम् । तथा धाविष्टोऽहमद्यं प्रतिष्ठे सिंह-
गडदुर्गं विजयाम् । तदत्र भवतु योतौसुखयो देव ।

शिवराज—ग्रहो घयोऽसि मम प्रधानवीर । अद्य खलु

तृणाय मत्वात्मजकीतुक्रियां राष्ट्रकभवत्योद्धृता पुर रणे ।
एकान्ततो मातृनिवेशवतिना संपादितवाशरथेषंशस्त्वया ॥४

इदानीं तु हस्तगत एव मम सिंहगडदुर्गः । यतः

एको मेहक्षत्रिपुरस्य भेत्ता, हरिषया दंत्यकुलस्यहृन्ना ।
तथा त्वमेवासि मभाग्रवीर न चेतरो दुर्गवरस्य जेता ॥५

शिवराज—(आश्चर्यं मे) ग्रहो, मशिवर ! क्या मंगल कार्य
सम्पन्न हो चुका ।

तानाजी—देव की कृपा से वह सुसम्पन्न ही है । क्योंकि माताजी
स्वयं ही विवाहोत्सव-कार्यं सम्हालेंगी । और उन्होंने मुझे आज ही
सिंहगडदुर्गं में विजयार्थं प्रस्थान हेतु आदेश दिया है । यतः इस
सम्बन्ध में देव निश्चिन्त हों ।

शिवराज—ग्रहो, मेरे प्रधानवीर तुम धन्य हो । आज वस्तुतः

पुत्र के विवाह कार्य को तृण के समान मानकर राष्ट्रभक्ति के
कारण, रण में सेनापतिव स्वीकार करनेवाले, माता के निर्देश का
पालन करने से तुमने राम के अश को प्राप्त कर लिया ।४

अब तो सिंहगडदुर्गं हस्तगत ही है । क्योंकि

जैसे एक शकर त्रिपुर का भेदन करनेवाले हैं, एकाकी ही इन्द्र
दंत्यकुल का नाश करनेवाले, उसी प्रकार हे प्रधानवीर ! तुम अनेक
मेरे दुर्गों के विजेता हो ।५

तानाजी—देव प्रभूणामेव प्रभावेण सवत्र नियोजयाना साध्य-
सिद्धिः । तद्

आक्रम्य दुर्भेद्यमरातिर्हन्य, सद्यो विजेध्ये सहसाप्रदुर्गम् ।
सेनाधिपत्ये हरिणा नियुक्तो, न किं कुमारो हतवान् सुरारीन् ॥६

शिवराज—तत्प्रतिष्ठता मे प्रधानवीरो दुर्गविजयाय ।

तानाजी—यवान्नापयति देव । (इति निष्क्रान्तः)

द्वारपाल—(प्रविश्य) विजयता देव. भोग्लेशमुद्राद्धूतपत्रहस्तो
दूतो द्वारि तिष्ठति ।

शिवराज—प्रवेशयन्तम् ।

द्वारपाल—तथा । (निष्क्रान्तः)

दूत—(प्रविश्य) विजयता महाराज । दक्षिणापथाधिपेन प्रणया-
भिनन्दनपुर सर प्रेषितमेतत्सावभौमशासन पत्रम् । (इति पत्रम्पठति)

तानाजी—देव, स्वामी के ही प्रभाव से सर्वत्र सेवको की सिद्धि
होती है । अथ

मैं दुर्ग, दानुसेना पर आक्रमण करके शीघ्र ही श्रेष्ठ दुर्ग
को विजय कर लूंगा । क्या इन्द्र द्वारा सेनापति के रूप में नियुक्त
कुमार कार्तिकेय ने देवताओं के दानुओं को मार नहीं डाला था ?
वरच मारा था । ६

शिवराज—मेरे प्रधानवीर ! तो दुर्ग विजय के लिए प्रस्थान करो ।

तानाजी—जैसी देव की आज्ञा । (चला जाता है)

द्वारपाल—(प्रवेशकर) देव की विजय हो । मुगलसम्राट् का
मुद्रांकित पत्र लिए हुए दूत द्वार पर प्रतीक्षा कर रहा है ।

शिवराज—प्रवेश करो उसे ।

द्वारपाल—ठीक है । (चला जाता है)

दूत—(प्रवेशकर) विजय हो महाराज । दक्षिण के राज्यपाल न
यमिनन्दन सहित सार्वभौम सम्राट् का यह पत्र भेजा है । (पत्र देता है) ।

शिवराजः—(आदाय) मन्त्रिन् उद्धात्य वाचयति । (इत्यप्यंयति)

मन्त्री—तथा । (इति वाचयति)

निजराजनगरात्केनाऽपि साम्राज्यविद्वेदिरोपजापकेनापसारित-
स्यापि साम्राज्यसपर्यानुरक्तस्यानेकसाहसयिकमशालिनो महम्मदीयधर्म-
रक्षकस्य शिवराजस्य सर्वानपराधान् नर्दयित्वा त च राजपेदन
सयोज्य तस्मै सनिहितराज्ययोश्चतुर्थांशसप्रहाधिकारं वितरति
साधभौमः । इति ।

शिवराज—मन्त्रिन्, छपूयं. खन्वममनुग्रह साधभौमस्यदक्षिणा-
पथाधिपस्य च । दूत त्व तावन्निवेदय दक्षिणापथाधिपाय यदचिरेण
प्रतापराबद्धिलोयो मम वीरात्मज उपेक्ष्यति तवान्तिकमिति ।

दूत—तथा । (इति निष्क्रान्त)

शिवराज—मन्त्रिन्, नाय बहुमान किन्तु प्राणसशयान्ता
प्रतारणा । मतः

शिवराज—(लेकर) मन्त्रिन्, खोलकर इसे बाचो । (देते ?)

मन्त्री—धस्तु । (वाचता है)

राजधानीनगर से किसी साम्राज्यविरोधी द्वारा बाहर निकाले हुए,
साम्राज्य की सेवा में रहने की इच्छावाले, विक्रमशाली, महम्मदीय
धर्म के रक्षक, शिवराज के सभी अपराधों को क्षमा कर के, राजपद पर
प्रतिष्ठित कर, पड़ोस के दो राज्यों का चतुर्थांश ग्रहण करने का
अधिकार उसे सत्ता देते हैं ।

शिवराज—मन्त्रिन्, निश्चिन् ही यह दक्षिण के राज्यपाल का
महान् अनुग्रह है । दूत तुम दक्षिण के राज्यपाल को सूचित करो कि
शीघ्र ही प्रतापराब के साथ मेरा वीर पुत्र उनके पास पहुँचेगा ।

दूत—ठीक है । (चला जाता है)

शिवराज—मन्त्रिन्, यह बहुत बड़ा सम्मान नहीं किन्तु प्राण-
सशयात्मक छल है । क्योंकि

कृतापकारेषु परेषु दुर्मतिस्त्यकाण्डमाविष्कुरुते य आदरम् ।
संमानदाम्ना स निघण्य तान् पशून् वधस्यसौ शौनिकवन्निनीकति ॥७

मन्त्री—देव इदानीमन्तो ध्याततेनानेन पुष्टविरामार्थं पुरस्कृतोऽ
य मामोपचार । परश्चेतेन तव करतलोपस्थापितेषु साशाज्य-
सिद्धिः । यत

दित्तोऽश्वरानुत्तरानपद पुनस्ते
स्वातन्त्र्यमेव परित प्रवटीकरोति ।
सोऽय तयोऽश्वरने प्रथितोऽपिहार—
सयो मण्डलेश्वरद्वनर्पयति प्रवस्तम् ॥८

शिवराज—ब्रह्मो मन्वन्तुहीत स्वया सायभोमशासनतद्वम् ।
सपापि नायमयसरोऽरमानिदनेशसोय । तद् इंधमाधितय सत् एव
सायनीयमम्बदभोरम् ।

मन्त्री—सर्वपापिभिरगते देवहयाध्ययमाय ।

कुप्टा द्वारा अपन एतु वा प्रबानव ६२ प्रकार सम्मान दिया जाना
उसी प्रकार है जैसे वपु को सादर महित वय स्थान को ही जाना । ७

मन्त्री—देव, इन समय घामत्र पुष्ट में ध्यात रहने के कारण
सम्पाट् न यह शक्ति नाति अपनायी है । परन्तु इन प्रकार साशाज्य-
सिद्धि प्राप्तके हाथ में था गयी । क्योंकि

शौनिकेद्वर द्वारा सायबा राजपद स्वीकार कर लेना, सायके विश्व
स्वाधीन होना को पूर्ण घोषणा है । और शत्रुपात्र दृष्ट्य करन का
अपिहार सायने मन्वलेन वा प्रवस्त अ. हार प्रदान कर दया है । ८

शिवराज—ब्रह्म, तुमने यह सम्पाट् व सायन का सायन छोड़
ही घोषा । फिर भी हम इस अवसर की उपाय नहीं करनी चहिये ।
कुप्टीदि द्वारा अपने छोड़ को हम प्राप्त करना चाहिये ।

मन्त्री—देव वा शिव ६६८ अ. ६६९ अ. ६७० अ. ६७१ अ. ६७२ अ. ६७३ अ. ६७४ अ. ६७५ अ. ६७६ अ. ६७७ अ. ६७८ अ. ६७९ अ. ६८० अ. ६८१ अ. ६८२ अ. ६८३ अ. ६८४ अ. ६८५ अ. ६८६ अ. ६८७ अ. ६८८ अ. ६८९ अ. ६९० अ. ६९१ अ. ६९२ अ. ६९३ अ. ६९४ अ. ६९५ अ. ६९६ अ. ६९७ अ. ६९८ अ. ६९९ अ. ७०० अ. ७०१ अ. ७०२ अ. ७०३ अ. ७०४ अ. ७०५ अ. ७०६ अ. ७०७ अ. ७०८ अ. ७०९ अ. ७१० अ. ७११ अ. ७१२ अ. ७१३ अ. ७१४ अ. ७१५ अ. ७१६ अ. ७१७ अ. ७१८ अ. ७१९ अ. ७२० अ. ७२१ अ. ७२२ अ. ७२३ अ. ७२४ अ. ७२५ अ. ७२६ अ. ७२७ अ. ७२८ अ. ७२९ अ. ७३० अ. ७३१ अ. ७३२ अ. ७३३ अ. ७३४ अ. ७३५ अ. ७३६ अ. ७३७ अ. ७३८ अ. ७३९ अ. ७४० अ. ७४१ अ. ७४२ अ. ७४३ अ. ७४४ अ. ७४५ अ. ७४६ अ. ७४७ अ. ७४८ अ. ७४९ अ. ७५० अ. ७५१ अ. ७५२ अ. ७५३ अ. ७५४ अ. ७५५ अ. ७५६ अ. ७५७ अ. ७५८ अ. ७५९ अ. ७६० अ. ७६१ अ. ७६२ अ. ७६३ अ. ७६४ अ. ७६५ अ. ७६६ अ. ७६७ अ. ७६८ अ. ७६९ अ. ७७० अ. ७७१ अ. ७७२ अ. ७७३ अ. ७७४ अ. ७७५ अ. ७७६ अ. ७७७ अ. ७७८ अ. ७७९ अ. ७८० अ. ७८१ अ. ७८२ अ. ७८३ अ. ७८४ अ. ७८५ अ. ७८६ अ. ७८७ अ. ७८८ अ. ७८९ अ. ७९० अ. ७९१ अ. ७९२ अ. ७९३ अ. ७९४ अ. ७९५ अ. ७९६ अ. ७९७ अ. ७९८ अ. ७९९ अ. ८०० अ. ८०१ अ. ८०२ अ. ८०३ अ. ८०४ अ. ८०५ अ. ८०६ अ. ८०७ अ. ८०८ अ. ८०९ अ. ८१० अ. ८११ अ. ८१२ अ. ८१३ अ. ८१४ अ. ८१५ अ. ८१६ अ. ८१७ अ. ८१८ अ. ८१९ अ. ८२० अ. ८२१ अ. ८२२ अ. ८२३ अ. ८२४ अ. ८२५ अ. ८२६ अ. ८२७ अ. ८२८ अ. ८२९ अ. ८३० अ. ८३१ अ. ८३२ अ. ८३३ अ. ८३४ अ. ८३५ अ. ८३६ अ. ८३७ अ. ८३८ अ. ८३९ अ. ८४० अ. ८४१ अ. ८४२ अ. ८४३ अ. ८४४ अ. ८४५ अ. ८४६ अ. ८४७ अ. ८४८ अ. ८४९ अ. ८५० अ. ८५१ अ. ८५२ अ. ८५३ अ. ८५४ अ. ८५५ अ. ८५६ अ. ८५७ अ. ८५८ अ. ८५९ अ. ८६० अ. ८६१ अ. ८६२ अ. ८६३ अ. ८६४ अ. ८६५ अ. ८६६ अ. ८६७ अ. ८६८ अ. ८६९ अ. ८७० अ. ८७१ अ. ८७२ अ. ८७३ अ. ८७४ अ. ८७५ अ. ८७६ अ. ८७७ अ. ८७८ अ. ८७९ अ. ८८० अ. ८८१ अ. ८८२ अ. ८८३ अ. ८८४ अ. ८८५ अ. ८८६ अ. ८८७ अ. ८८८ अ. ८८९ अ. ८९० अ. ८९१ अ. ८९२ अ. ८९३ अ. ८९४ अ. ८९५ अ. ८९६ अ. ८९७ अ. ८९८ अ. ८९९ अ. ९०० अ. ९०१ अ. ९०२ अ. ९०३ अ. ९०४ अ. ९०५ अ. ९०६ अ. ९०७ अ. ९०८ अ. ९०९ अ. ९१० अ. ९११ अ. ९१२ अ. ९१३ अ. ९१४ अ. ९१५ अ. ९१६ अ. ९१७ अ. ९१८ अ. ९१९ अ. ९२० अ. ९२१ अ. ९२२ अ. ९२३ अ. ९२४ अ. ९२५ अ. ९२६ अ. ९२७ अ. ९२८ अ. ९२९ अ. ९३० अ. ९३१ अ. ९३२ अ. ९३३ अ. ९३४ अ. ९३५ अ. ९३६ अ. ९३७ अ. ९३८ अ. ९३९ अ. ९४० अ. ९४१ अ. ९४२ अ. ९४३ अ. ९४४ अ. ९४५ अ. ९४६ अ. ९४७ अ. ९४८ अ. ९४९ अ. ९५० अ. ९५१ अ. ९५२ अ. ९५३ अ. ९५४ अ. ९५५ अ. ९५६ अ. ९५७ अ. ९५८ अ. ९५९ अ. ९६० अ. ९६१ अ. ९६२ अ. ९६३ अ. ९६४ अ. ९६५ अ. ९६६ अ. ९६७ अ. ९६८ अ. ९६९ अ. ९७० अ. ९७१ अ. ९७२ अ. ९७३ अ. ९७४ अ. ९७५ अ. ९७६ अ. ९७७ अ. ९७८ अ. ९७९ अ. ९८० अ. ९८१ अ. ९८२ अ. ९८३ अ. ९८४ अ. ९८५ अ. ९८६ अ. ९८७ अ. ९८८ अ. ९८९ अ. ९९० अ. ९९१ अ. ९९२ अ. ९९३ अ. ९९४ अ. ९९५ अ. ९९६ अ. ९९७ अ. ९९८ अ. ९९९ अ. १००० अ.

शिवराजः—तत्प्रतिष्ठता कुमारेण सह प्रतापरावो दक्षिणाधिपि
पराजघानीम् । तत्र च निवसताऽनेन कर्तव्य समन्ततोऽस्मच्चतुर्था
शसप्रह ।

प्रतापराव — यथाज्ञापयति देवः । (इति निष्क्रान्त)

शिवराजः—मन्त्रिन्, गान्धारविजयात्तरमेवाभियोद्ययेऽस्मा
धूर्तं भोगलेश्वर । सत् क्षिप्रमेव सनाहितबलैरस्माभिश्चतुर्धा श
सप्रहमिषेणाक्रम्य स्वायत्तीकर्तव्य समयो महाराष्ट्र प्रदेश । भवन्वद्यं
प्रयाणाभिमुखास्त्वदधिष्ठिता मे रण प्रधीरा । यावदहमपि करोष
सप्रहार्थं प्रतिष्ठे गुजंरप्रदेशम् । प्रयागतेष्वस्मात्तु प्रवर्तिष्यते साम्राज्या
भियेकमहोत्सव । तत्संभ्रयन्तां संभाराः पुरोहितपुरोगमै कर्मसचिवैः ।

मन्त्रो—यथाज्ञापयति देव । (इति निष्क्रान्ता सर्वे)

समाप्तोऽयं दुर्गविजयनाम

नवमोऽङ्कः

शिवराज—तो, कुमार के साथ प्रतापराव की दक्षिणाधिप की
राजघानी के लिए भेज दो । और वहाँ रहकर यह चारो ओर से
चतुर्थांश सप्रह करें ।

प्रतापराव—देव की जो आज्ञा । (चला जाता है)

शिवराज—मन्त्रिन् गान्धारविजय के पश्चात् तुरन्त धूर्त मुगल-
सम्राट् हमें व्यस्त कर लेगा । अतः शीघ्रही अपनी सशक्त सेना द्वारा
चतुर्थांश सप्रह करने के बहाने से भागभण कर समस्त महाराष्ट्र
प्रदेश को अधिकार में कर लेना चाहिए । आज हमारे रणवीर तुम्हारे
सेनापतित्व में प्रस्थित हो जायें । जब तक मैं कर सप्रह करने के लिए
गुजंरप्रदेश की प्रस्थान करता हूँ । मेरे वापस आ जाने के बाद
साम्राज्याभिषेक महोत्सव सम्पन्न होगा । इसलिए पुरोहित आदि
धन्य नर्मचारी भावदयक सामग्री एकत्र करते रहें ।

मन्त्रो—जैसी देव की आज्ञा । (सभी चले जाते हैं)

दुर्ग विजय नामक

नयां अफ समाप्त

दशमोऽङ्कः

(ततः प्रविशतो राजपुरुषो)

प्रथम—अहो बतारस्यसन्धस्य मोगलेशस्य कुटिलपाशवन्धविनि-
मृक्तेन महाराजेन पुनरहि लोलायुद्धं स्वायत्तीकृता महाराष्ट्रभूः ।

द्वितीय—अत्र तथापि सिंहगडकुगजयेन नासीद्देवस्य परम
परितोषः ।

प्रथम—अये कथं विजयेऽप्यपरितोष इत्युच्यते ।

द्वितीय—तद्गुणाय प्रेषितस्य तानाजीवीरस्य प्राणान्तकटेनो-
द्धेजितो देवः ।

प्रथमः—कुतो विजेतुरपि प्राणसङ्घटम् ।

दसवां श्रृङ्क

(उसके बाद दो राजपुरुषों का प्रवेश)

प्रथम—मोह आश्चर्य, विश्वासघाती मुगलसम्राट् के कुटिल बन्धन
से स्वयं को मुक्त कर, सहज युद्ध से महाराज ने महाराष्ट्र प्रदेश पर
अधिकार कर लिया ।

द्वितीय—अत्र फिर भी सिंहगडदुर्ग की विजय से देव को पूर्ण
रन्धोप नहीं है ।

प्रथम—अरे ! विजय होने पर भी असन्तोष, ऐसा क्यों बहते हो ।

द्वितीय—उस दुर्ग की विजय के लिए प्रेषित तानाजीवीर के
प्राण से देव को धोम है ।

प्रथम—दिनेना के लिए प्राणसङ्घट करने ।

द्वितीय—भद्र, गाढाग्यवारवृत्ते निशांथे योधामवलम्ब्य तद्दुर्ग-
प्राकारमासाद्यंकेन मावलेवीरेणाथ प्रसारिताभि रज्जुभिरय प्रवीरोऽ
ध्याशोह्यग्निज संनिष्ठाणम् । अथ प्रवृत्ते घोरसग्रामे परस्पर नियुध्य
मानाबुदयभाणतानाजोवीरो वीरगति समापद्येताम् ।

प्रथम—ग्रहो स्वाम्यथे प्राणानुत्सृजताग्नेन खलु कृतकृत्यता नीत
क्षान्त जन्म ।

द्वितीय—अग्रान्तरे च तेनैव भाग्येणाप्यारुढेन सूर्याजीवीरेण
परास्त रिपुदल स्वविजयस्थापनाय प्रज्वालितो महानल । तत्क्षण
तेन सजातहर्षेणापि श्रेणेन यदा परेद्युतिजबालसुहृदस्तानाजीवीरस्य
प्राणव्ययोदन्त आकृगितस्तदानीमेव विपण्यवदनेन सहसोदीरित
'हा कष्टमेकं सिंह प्रतिप न । अपरस्तु विपन्नः ।' इति ।

प्रथम—ग्रहो, अनेकवीरव्यपसाध्या हि साम्राज्यसिद्धिः ।

द्वितीय—भद्र, रात्रि के घोर स्रघकार म राध के सहारे उस
दुर्ग के प्राकार पर पहुँच मावले वीर ने नीचे लटकायी रस्सी की
महायना से अपने सैनिकों को इस दुर्ग में चढ़ाया । घोर सग्राम में
परस्पर युद्ध करते हुए बुदयभाण और तानाजी दोनों वीर वीरगति
को प्राप्त हो गए ।

द्वितीय—ग्रहो स्वामी के कार्यार्थ अपने प्राणों को आहुति देकर
इसने अपना क्षत्रिय जन्म सफल कर दिया ।

प्रथम—इसी बीच उक्त मार्ग से ही वीर सूर्याजी ने रिपु दल को
परास्त कर विजय प्रतीति स्वरूप महानल प्रज्वालित कर दिया ।
उमसे हर्षित होकर भी देव ने जब दूसरे दिन अपने घाल सुहृद् तानाजी
वीर का प्राणान्त सुना तो दुःखी शीघ्र सहसा बहा—'हा कष्ट एक
सिंह ग्रन्दी शृभा दूसरा नष्ट ।'

प्रथम—ग्रहो, वस्तुतः अनेक वीरों की आहुति से साम्राज्यसिद्धि
मिलती है ।

द्वितीय —अथ किम् । ततः प्रभृतिषु सर्वत्र प्रतिहतप्रसरः शुभ्रविजय-
ध्वजा देवस्य । आवाजावीरेण स्वायत्तीकृत कल्पाणप्रदेश । प्रधान
मन्त्रिणा च माहुलीदुगः । प्रतापरायेण च साल्हेरदुगः । एष समन्ततो
विजयपरमाञ्जितस्य देवस्य साम्राज्यमहासवमभिनन्दितु सप्रति
सन्नुपस्थितेन साम तमण्डलेन समाकुलोऽयं दुर्गराज परमाश्रियमा-
दधाति ।

प्रथम —देवतानुग्रह तरेण नैव सम्भवत्येतादृश सौभाग्यम् ।

द्वितीय —अपि च सप्राप्ता अत्र साक्षाद्देवमूर्तयः काशीनिवासिनो
गागाभटप्रभृतयो विप्रवर्षा देवस्य साम्राज्याभियेके सपादयितुम् ।

प्रथम —एष समुपाजिता मत्प्राप्तेन एकलभारतव्यापिनी यश
समृद्धिः ।

द्वितीय —भद्रं जातं खलु तस्मात्प्रवेशसमये । यावत्तत्रोपेव ।
(इति परिक्रामतः)

द्वितीय—यह सत्य है । उसी समय से देव का विजयध्वज सर्वत्र
फहर उठा । आवाजी वीर ने कल्पाण प्रदेश अधिकार न किया ।
प्रधानमंत्री ने माहुली दुग । और प्रतापराव ने साल्हेरदुर्ग । इस प्रकार
विजय विभूषित देव का साम्राज्यमहोत्सव न सम्मिलित होने के लिए
चारों ओर ने आए सप्रति उपस्थित सामन्तो से पूछ यह दुर्गराज
परम शोभा धारण कर रहा है ।

प्रथम—देव के अनुग्रह बिना यह सौभाग्य सम्भव नहीं ।

द्वितीय—यहाँ तक कि काशीनिवासी साक्षात् देवमूर्ति ने गागाभट
आदि श्रेष्ठ बाह्य देव का साम्राज्याभियेक सपादित करने के लिए
आ गए हैं ।

प्रथम—इस प्रकार महाराज ने सम्पूर्ण भारत में ध्यात होनेवाला
यश प्राप्त कर लिया ।

द्वितीय—भद्र, समा प्रवेश का समय हो गया । वहाँ चलना
चाहिए । (दोनों घूमते हैं ।)

प्रथम—(परितो विलोक्य) नूनमदृष्टपूर्वनिव मुपमा विभक्ति
दुर्गराजः ।

ध्वजवसनपताकामण्डिता राजमार्गा,
कुसुममुकुलमालारञ्जिता कुट्टिमाश्रय ।
नवविरचितरागालेख्यचित्रास्तराणि ,
दधति परमशोभां धूपितान्यङ्गनानि ॥१

द्वितीय—एवमेतद् । एते संप्राप्ता वयमभिवेकमण्डप परिसरम् ।

पश्चात्

मुक्ताहिरण्यपटारचितोपकार्या ,
वासगृहाणि विपुला गजयाजिशाला ।
कोशालयाश्रय भसनाभरणान्नशोष्ठा,
प्रख्यादपत्यनुपमामधिराजलक्ष्मीम् ॥२

प्रथम—(चारों ओर देखकर) निश्चिन् ही यह दुर्गराज पहले न
देखी गयी अपूर्व सुन्दरता को धारण कर रहा है ।

राजमार्गें सुन्दर वस्त्रों, ध्वज और पताकामों से शोभित हैं,
मणिजटित स्थान फूलों की बलिया से गूधे मालामों से सजे, नये-नये
विविध विभों से चित्र-विचित्र वस्त्रों से ढके हुए आगन जो सुगन्धित
बिबे हुए हैं, अत्यन्त सुन्दरता धारण कर रहे हैं ।

द्वितीय—हाँ, ऐसा ही प्रतीत हो रहा है । हमलोग अभिवेक-
मण्डप के पास पहुँच गए हैं । इधर देखिए—

राज सिविर मानी घोर स्वर्ण से जटित वस्त्रों द्वारा निर्मित हैं,
घोड़े, हाथियों के लिए विशाल भवन, बड़े-बड़े प्रामाद, कोशगृह,
वस्त्रगृह और धन्नागार सभी महाराज की अपार लक्ष्मी का आभास
कर रहे हैं ।

प्रथम—अप्रतिम खल्वय साम्राज्याभिषेकमहोत्सवोपक्रम । यतः

मुक्ताविद्रुमतोरणाङ्कितपुरोद्गाराणि तूयंस्वने—
 श्चीत्वारं करिणा मृदङ्गनिनद्वेरातन्वते मङ्गलम् ।
 काञ्चोन्नूपुरकिङ्किणोषवणितकं रम्यंयशोगीतिकां
 गायन्ति प्रमदा महोत्सवमुदा मोदाधुपूणनिना ॥३

द्वितीय—न खल्वय केवल महोत्सव किन्तु महाराष्ट्रियाणा
 स्वातन्त्र्यसूर्योदयोऽपि (सभामण्डप प्रविश्य) भद्र पश्येय निवर्तित
 साम्राज्याभिषेकमङ्गलो देवो मातरमभिवादयते ।

चण्डांशुप्रखरातपाशुणरुचिदूरात्परांस्तापय—
 दासीद्यस्तपनद्युति परिपत्तन् देशान्तर देशत ।
 ज्योत्स्नासमस्तमानदानपरम योयूपरत्नाकर,
 सोऽय च्चाद्रमसी दधाति सुपमामाह्लादमन्स्वा प्रजा ॥४

प्रथम—वस्तुत साम्राज्याभिषेक की यह तैयारी अनोखी है ।
 क्योंकि

सामने के द्वार भोती और मणियों से खचित च दासरो द्वारा
 सजे है हाथिया के चीत्ार तुरी की ध्वनि मृदग स्वर से मंगल
 बिखर रहा है । प्रसन्नता के आसुओं से पूर्ण मुखवासी स्त्रियाँ तूपुर
 एव मेखला का सुन्दर स्वर बिखेरती हुई यश का गान कर रही हैं । ३

द्वितीय—यह केवल महोत्सव ही नहीं बल्कि मराठा के स्वातन्त्र्य-
 सूर्य का उदय भी है । (सभा मण्डप में प्रवेश कर) भद्र, देखो यह
 महाराज साम्राज्याभिषेक के मंगल काय से निवृत्त होकर माता को
 प्रणाम कर रहे हैं ।

अपने प्रचण्ड तेज की किरणा से शत्रुओं को, ताप देनेवाला या
 जैसे सूर्य एक ओर से दूसरी ओर घूमकर प्रकाश बिखेरता रहता है ।
 वही अमृत के समुद्र के सदृश चन्द्रमा की सुन्दरता को धारण किये हुए,
 जैसे उसकी ज्योत्स्ना समस्त लोक को शीतलता प्रदान करती है, उसी
 प्रकार अपनी प्रजा को दान मान द्वारा प्रभू कर रहा है । ४

तत्तावदुयमप्यासनपरिग्रहं कुमं । (इति निष्क्रान्ती)
(पटीक्षेप)

इति विष्कम्भकः

(ततः प्रविशति ययानिदिष्टः शिवराज)

शिवराज — घम्य एष सपादितनाम्राज्यभियेकमङ्गलो महियो
द्वितीय शिवराजोऽभिवाद्यते । (इति महिष्या सह पादयो पतति)

राजमाता — (सानन्दाश्रु) यत्त चिरं गाय । वत्से घिरं सकल-
सौभाग्यभाजन भूया । दिव्याद्य खलु मया प्रत्यक्षोऽग्निने पूर्वानुभूतं
स्वप्नदर्शनम् । यत

सस्याप्य विक्रमजित भुवि घर्मराज्य
धरव त्वया कुलयज्ञ प्रवितं प्रिलोक्याम् ।
यच्चापि दुर्लभमन-ततपश्चयेन,
तद्वै प्रवीरजननी पदमयित मे ॥५

हम लोग अपना आसन ग्रहण करें । (दोनों निरङ्गन जाते हैं)

(परदा गिरता है)

विष्कम्भक समाप्त

(उसके बाद पूर्व वर्णानुसार शिवराज का प्रवेश)

शिवराज—माते, साम्राज्याभियेक का मङ्गल कार्य सपादित करके
यह शिवराज, द्वितीय राजी के साथ प्रणाम करता है । (राज्ञी-सहित
पटो पर गिरता है)

राजमाता—(प्रसन्नता के साथ सहित) वत्स ! चिरञ्जीवी बनो ।
वत्से ! चिरपाल तक समस्त सौभाग्यो की पात्र बनी रहो । भाग्य से
घाज मेरे सामन पहले देवा गथा अपूर्व स्वप्न प्रत्यक्ष हो गया । यद्यपि
अपने परशम से जीवन्त पृथ्वी पर घर्मराज्य की स्थापना द्वारा
पुत्र तुमने कुल का यज्ञ त्रिलोक में प्रसिद्ध कर दिया । अत्यन्त बठिन
सपदचर्चा से भी प्राप्त करना जो बठिन है, वह श्रेष्ठ वीर की माता
का पद मुझे प्रदान किया ॥५

उभो—(सप्रथयम्) प्रतिगृह्येताशीः ।

शिवराज—अथ प्रतिपद त्वदनुशासनानुवर्तनेव मया समासा-
दितोऽयं लोकोत्तरोत्कर्ष ।

(इति छत्रचामरधररूपसेवितो रत्नसिंहासनमुपमृत्य महिष्या
सहारोहति)

सभ्या—(उत्थाय) विजयता छत्रपतिमहाराज । विजयता
नाम्नाज्ञो ।

(इति सुवर्णकुमुदानि विकिरन्ति)

(प्रधानाधिकारिणः सामन्त प्रतिनिधयश्च मणि मुक्ता स्वर्ण-
कृत्तुमस्रज धरन्वसन्ति)

(नेपथ्ये)

वंतालिकी—विजयना महिष्याद्वितीयश्छत्रपतिमहाराज साम्राज्या-
भियेकमङ्गलेन ।

दोनों—(बिचअता से) आनीप म अनुशुहीत है ।

शिवराज—माते ! सदा आपन भादेशानुसार चलकर ही मैंने यह
लोकोत्तर उन्नति-पद को प्राप्त किया है ।

(छत्र और चामरधारी सेवका द्वारा सेवित, राजी-सहित रत्न
सिंहासन पर बैठते हैं)

सभासद—(उठकर) छत्रपति महाराज की विजय हो । साम्राज्यी
की जय हो ।

(स्वर्णफूल विसरते हैं)

(प्रधान अधिकारी, सामन्तो वे प्रतिनिधिगण मणि, मुक्ता, स्वर्ण
और फूलो की मालाएँ धरिण करते हैं)

(नेपथ्य से)

वंतालिका—साम्राज्याभियेक मङ्गल द्वारा महारानी-सहित छत्रपति
महाराज की विजय हो ।

द्विजवरसचिवेन्द्रमंग्रतोदाभिवक्तो
पिञ्जपदविनानंदिष्ठकन्याभिगीतः ।
दक्षिणमणिकिरीटो रत्नसिंहासनस्थः
विष्णुपतिरिथ त्वं राजनि भारतेन्द्र ॥६

(अष्टोत्तरशतशतज्ञीस्यनोपक्रमः)

शोणितो—, योऽन्वावाघेन गायत.)

(मालकोशरागेण त्रितासेन गीयते)

दृपालो द्युपते महाराज ॥
भारतवर्षवरोक्ष कुलपते,
नयसम्पाजितदिग्गजधीते,
रमापते महाराज । दृपालो० ॥१

स्वातन्त्र्यगुरोपगायतारण—
गुरुसंपादितराम्द्रोढारण,
वर्षवते महाराज । दृपालो० ॥२

समाप्त, थे०८, काशी द्वारा प्रसिद्धि जल से प्रसिद्धि,
गुप्तर कन्याओं द्वारा गाये हुए विजयगीत के स्वर-विनार से, गुप्तर
मणिकिरीट धारण किए, रत्नसिंहासन पर आसीन, हे भारतेन्द्र !
तुम इन्द्र के सदृश शोभिने हो रहे हो ।६

मायापहतनिलिसभुमार—
 स्वयमसि कृपानिधिदिवावतारः
 विबुधपते महाराज । कृपालो० ॥३
 अरिगणवक्रतिमिरहरमिहिर—
 स्वय विलससि महता रणवीर—
 सिखवापने महाराज । कृपालो० ॥४
 निजजनपदपुरजनाभिनन्दित
 देवद्विजवरकिप्रदयन्वित
 विद्वपते महाराज । कृपालो० ॥५

गागाभट—विष्ट्याद्य वर्धते महाराजश्चिरप्रापितेन साम्राज्य-
 धोषितसितेन ।

बाहुप्रतापसमुपासदिगन्तकीर्ति
 सामन्तमौलिमणिरञ्जितपावपोठ ।
 राजन्यमग्निप्रसधियं समुपासितस्त्वं
 साम्राज्यसंभवयुतोऽसितरा विभासि ॥७

कर दिया ।२ हे विबुधपते ! माया (कूटनीति) द्वारा समस्त भूमि
 (प्रदेश) के भार को दूर करनेवाले हे कृपानिधि ! तुम दिव के
 भयभार हो ।३ हे सूर्य ! (महत्सेज को धारण करनेवाले दानिववीर)
 जैसे धन्वकार को सूर्य दूर कर देता है उसी प्रकार शत्रुओं के झूठ
 को धीरनेवाले हे रणवीर तुम शत्रुसेज से विलग रहे हो ।४ हे
 विद्वपते ! अपने जनपद और पुरजनों द्वारा अभिनन्दित और देवों,
 विन्नरों एव श्रेष्ठ वाह्यणों द्वारा वन्दित होकर गोमा पा रहे हो ।५

गागाभट—भाग्यवशात् चिरप्रापित साम्राज्यधी-विशक्त द्वारा
 महाराज बड़ रहे हैं ।

अपने बाहु (सैनिकगणों) के प्रताप से जगन्म्यामिनी कीर्ति अर्जित
 कर, तुम साम्राज्य-संभव म युक्त हो अत्यधिक शोभित हो रहे हो—
 तुम्हारे करण सामन्तों के योग पर रसे मणिप्रदित मुकुटा से शोभित
 हैं और राजाओं, मन्त्रियों एव कवियों द्वारा तुम मेदित हो रहे हो ।७

शिवराज.—भगवन् परदेवताप्रसादेन भोगुष्ठरामदासचरणानुग्रहेण चाद्य सभासाहितं मया साम्राज्यदेश्यम् । तद्

धिर कषायध्यजमण्डितानि राष्ट्रे सभामण्डपमन्दिराणि ।
साम्राज्यदेश्यस्य गुरोः समन्तान् प्रस्थापयन्त्वप्रतिमं प्रभावम् ॥८

प्रधानमन्त्री—(प्रतिनिधिमण्डलं निर्दिश्य) एते कुस्वशाहोशप्रभृति-
सामन्तप्रतिनिधयो हस्त्यश्वरत्नहिरण्योपायनेद्वेष्य साम्राज्याभिषेक-
महोत्सवमभिमन्वन्ति ।

शिवराज —मन्त्रिन् सामन्तसाहाय्येनाद्य मयाऽनुभूयत एतन्मङ्ग-
लम् । तसत्कृत्य तोषयन्तान् महाहृष्यन्नाभूषणाविभिः ।

प्रधानमन्त्री—तथा । (इति यथाविष्टं कुरुते)

शिवराज—भगवन्, परमशक्तिमान् श्री रामदास के चरणों के अनुग्रह से आज यह साम्राज्य-वैभव मुझे—प्राप्त हुआ है । इसलिये

राष्ट्र के समस्त भवनो और सभामण्डप को कषाय ध्वज से शोभित करके साम्राज्य देव हमारे गुष्ठ्रेष्ठ के अपरिमित प्रभाव को चारों ओर चिरकाल तक फैलाया जाय ।

प्रधानमन्त्री—(प्रतिनिधि मण्डल की ओर संकेत कर) कुस्वशाह भादि ये सामन्त प्रतिनिधि हाथी, घोड़े, रत्न और स्वर्ण भादि उपहारों द्वारा देव के साम्राज्याभिषेक-महोत्सव का स्वागत करते हैं ।

शिवराज—मन्त्रिन्, सामन्तो की सहायता से आज हम इस मंगल अवसर का अनुभव कर रहे हैं । अतः उनके प्रतिनिधियों को बहुमूल्य वस्त्रों तथा भाभूषण प्रदान कर सन्तुष्ट करें ।

प्रधानमन्त्री—ठीक है । (आदेशानुसार करता है)

शिवराज—यद्य च सभावयतु कोशाध्यक्षो लक्षमुद्राभिराचार्यं
चतुर्विंशतिसहस्राभूषणैश्च सर्वान् द्विजोत्तमान् ।

कोशाध्यक्ष—तथा । (इति यथादिष्टं कुरुते)

यागाभट—भारतेन्द्र तव महार्हसभावनया परितुष्टानामस्माक-
मेतदेवास्ति परममाशास्यम् । यत्तथायं

स्थातग्न्यभावज्वलिताहवानो द्विपदविभिर्जनता प्रतपंणः ।

निर्वाहितो मन्त्रिपुरोहितादिभिः सास्त्राग्न्ययज्ञोन्नितरां समृद्धयताम् ॥६

शिवराज—अथ सभाजय मम सास्त्राग्न्याधिकारपदमण्डनान्ष्टी
प्रधानमन्त्रिणो महार्हरत्नवसनाभूषणैः ।

कोशाध्यक्ष—तथा । (इति यथादिष्टं कुरुते)

शिवराज—घोर इसके बाद कोशाध्यक्ष, एक लक्ष मुद्रामो द्वारा
आचार्य को, चौबीस हजार मुद्रामो से पुरोहित, पाँच हजार मुद्रामो से
प्रत्येक ऋत्विजों, घोर बहुमूल्य वस्त्र एक धानूषणों से सभी श्रेष्ठ
ब्राह्मणों को सम्मानित करें ।

कोशाध्यक्ष—ठीक । (आदेशानुसार करता है)

यागाभट—भारतेन्द्र आपने बहुमूल्य उपहारों से सन्तुष्ट हम लोगों
की यह शुभकामना है । कि तुम्हारा यह

स्वतंत्रता की भावना से ज्वलित घोर उममें धानूषणों की आहुति,
प्रजाजन के सम साहाय्य, मंत्री घोर पुरोहितों द्वारा मयान्त्रि
सास्त्राग्न्यरूप मया मदा, सर्वेषा समृद्धि को प्राप्त हो ॥६

शिवराज—अब हमारे सास्त्राग्न्याधिकार-पद की घोना-मण्डन
आठ प्रधानमन्त्रियों की बहुमूल्य वस्त्र, घोर धानूषणों द्वारा
सम्मानित करो ।

कोशाध्यक्ष—ठीक है । (आदेशानुसार करता है)

प्रधानमन्त्री—विद्युद्देवतां सन्नाट्पदवीमपिहृद् महाराजनभि-
नन्द्याशास्त एव भूषवर्गो यत्

प्रबलकुटिलबिद्विषा विभेत्ता प्रतिदिनमेव तर्षधतां प्रभावः ।
तपनकुलमणौ सपर्यवेदं भवतुसदा सफलं च जीवित न ॥१०

शिवराज—अथ बहुमानेन संमानयस्व मे विजययज्ञोभागिनी
चीराणसरान् ।

हृत्वा देहं निजं ये सनरहृतवहे प्रस्थिता, पुण्यलोका—
स्तेषां धीरोत्तमाना समुदितपशसामन्वये ये प्रसूताः ।
मृत्युर्कर्षप्रतापप्रमथितरिपवो ये पुनर्नोतिदक्षा
सर्वे ते राष्ट्रभक्तान्पकुलविभवंमार्तनोया यथाहम् ॥११

कोषाध्यक्ष—तथा । (इति राजशासनान्यर्षपति)

शिवराज—मन्त्रिन् सभावय विदुषो विप्रधर्यान् निघतवापिक-

प्रधानमन्त्री—भाग्यवशात्, सन्नाट् पद पर घासीन महाराज का
अभिमन्दन कर ये सेवक चाहते हैं कि

प्रबल घोर कुटिल शत्रुओं का नाश करनेवाला आपका प्रभाव दिन
प्रतिदिन बढ़ता रहे घोर सूर्यवश के मणि आपकी सेवा में हमारा
जीवन सदा सुखी और सफल रहे ।१०

शिवराज—विजय यज्ञभागी श्रेष्ठ वीरो को श्रेष्ठ सम्मान
प्रदान करो ।

रणाभूमि में जिन लोगों ने अपने शरीर की माहुति देकर पुण्यलोक
को प्राप्त किया उन श्रेष्ठ वीरो के कुल में जो उत्पन्न हैं, जिन लोगों
ने अपनी बुद्धि के प्रताप से शत्रुओं का नाश किया, जो नीति-निपुण
हैं वे सभी राष्ट्रभक्त राजकुल वैभव से यथायोग्य सम्मानित
किये जायें ।११

कोषाध्यक्ष—ठीक । (राज्यशासन समपित करता है ।)

शिवराज—मन्त्रिन् विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मणों के लिए वापिक वृत्ति

वृत्तिवित्तरेणम् । मा सीदत्वदिमन् मम धर्मराज्ये कोऽपि इनातको
द्विजोत्तम । यतस्तदघोन एव सद्द्विजाप्रधारः ।

मन्त्री—तथा । (इति विप्रेभ्यो राजशासनान्वर्षयति)

शिवराज—सचिवा येवा मानाधर्माणां लोकानां संप्रहार्धमनेक-
वीरबलिभिर्भेषा सम्प्राजितमेतद्धर्मराज्यं तान् सर्वानपि वसतान्नपाना-
विभि सत्कुर्यान्नुरञ्जयत । यतस्तदनुरागपरवशा ह्यस्माकं साम्राज्य-
संपदः ।

सचिवा—तथा । (इति निष्क्रान्ता)

प्रतिहार—(ऋषिभ्यः) विजयता देवः । दिव्या संप्राप्ता धन-
धीधरणाः ।

शिवराज—सीध प्रवेद्य भवन्त ममानुभावम् ।

प्रतिहारः—तथा । (इति निष्क्रान्त)

नियत कर हैं । हमारे धर्मराज्य में कोई भी विद्वान् ब्राह्मण दुखी न
रहे । क्योंकि उन्हीं के अधीन सचिवा का प्रधार है ।

मन्त्री—ठीक । (ब्राह्मणों को राज्याज्ञा प्रदान करता है)

शिवराज—सचिवगण जिन नानाधर्मावलम्बी प्रजाजनों के लिए
अनेक वीरों की बलि देकर मैंने यह धर्मराज्य प्राप्त किया है, उन
सबको धन वस्त्रादि से सन्तुष्ट रखें, उन्हें प्रसन्न करें । क्योंकि उनमें
अनुराग पद ही हमारे इस साम्राज्य की सम्पत्ति आधारित है ।

सचिवगण—ठीक है । (बसे जाते हैं)

प्रतिहार—(श्रेयस्कर) विजय हो देव । भाग्य से धी (गुह्यंष्ट)
या गए हैं ।

शिवराज—उन देव पुरंद को सीध से मागो ।

प्रतिहार—ठीक है । (निजम जाता है)

(ततः प्रविशति रामदासः)

शिवराजः—(सर्वैः सहोत्थ्याय) एष श्रीचरणप्रसादसमुपाजित-
साम्राज्यवैभवः शिवराजोऽभिवाद्यते । (इति पादयोः पतति)

श्रीरामदास—बत्स, उतिष्ठ । मम वचसि सर्वथा वर्तमानस्य
तव सकलमप्यभीष्टं मया तपः प्रभावात्संपादितम् । अथ किं ते भूयः
उपकरवाणि ।

शिवराज—भगवदनुग्रहेण न मे किमपि भद्रमवशिष्यते । तथापी-
दमस्तु भरतवाक्यम् । यदस्मिन् मम भारतवर्षे

मोदन्ती नितरा स्वकर्मनिरता पर्याप्तकामा प्रजा,
एषन्ती नयविक्रमाद्भूमशसो लोकप्रिया, पार्यिवाः ।

(उसके बाद रामदास प्रवेश करते हैं) —

शिवराज—(सबके साथ उठकर) श्रीचरणों के प्रसाद से साम्राज्य
वैभव को प्राप्त करनेवाला यह शिवराज आपको प्रणाम करता है ।
(पैरो पर गिरता है)

श्रीरामदास—बत्स उठो । मेरी आज्ञा का सदा पालन करनेवाले
तुम्हारे सभी अभीष्टों को मैंने तप के प्रभाव से पूर्ण किया । अब
तुम्हारे लिए और क्या कर दूँ ।

शिवराज—भगवन् के अनुग्रह से अब मेरे लिए कुछ भी शेष
नहीं है । तथापि यह भरतवाक्य रहे । कि मेरे इस भारतवर्ष में

प्रजाजन अपने कर्म में निरत रहें, अपने अभीष्ट की पूर्ति कर सदा
सुखी, प्रसन्न रहें, लोकप्रिय राजागण अपने दिव्य और नीति नैपुण्य से
यदास्वी हो समृद्ध होते रहें । वादस समय पर जलवर्षण कर धान्यों

(१६७)

सस्याना च समृद्धय जसमूष सिञ्चन्तु कालेरसां
सप्तारङ्गप्रकृतिप्रकर्षंश्चिरं राष्ट्रं चिरं वर्षंताम् ॥१२

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

साम्राज्याभिषेकनाम

दशमोऽङ्कः

धनपतिसाम्राज्यं नाम नाटकम्

समाप्तम्



की समृद्ध करें—इस प्रकार सातो षण्णो से पूर्ण प्रकृति के सुन्दर विकास
से राष्ट्र सदा बढ़ता रहे ॥२

(सभी निकल जाते हैं)

साम्राज्याभिषेक नामक

दसवाँ अंक समाप्त

धनपति साम्राज्यम् नामक यह नाटक समाप्त

